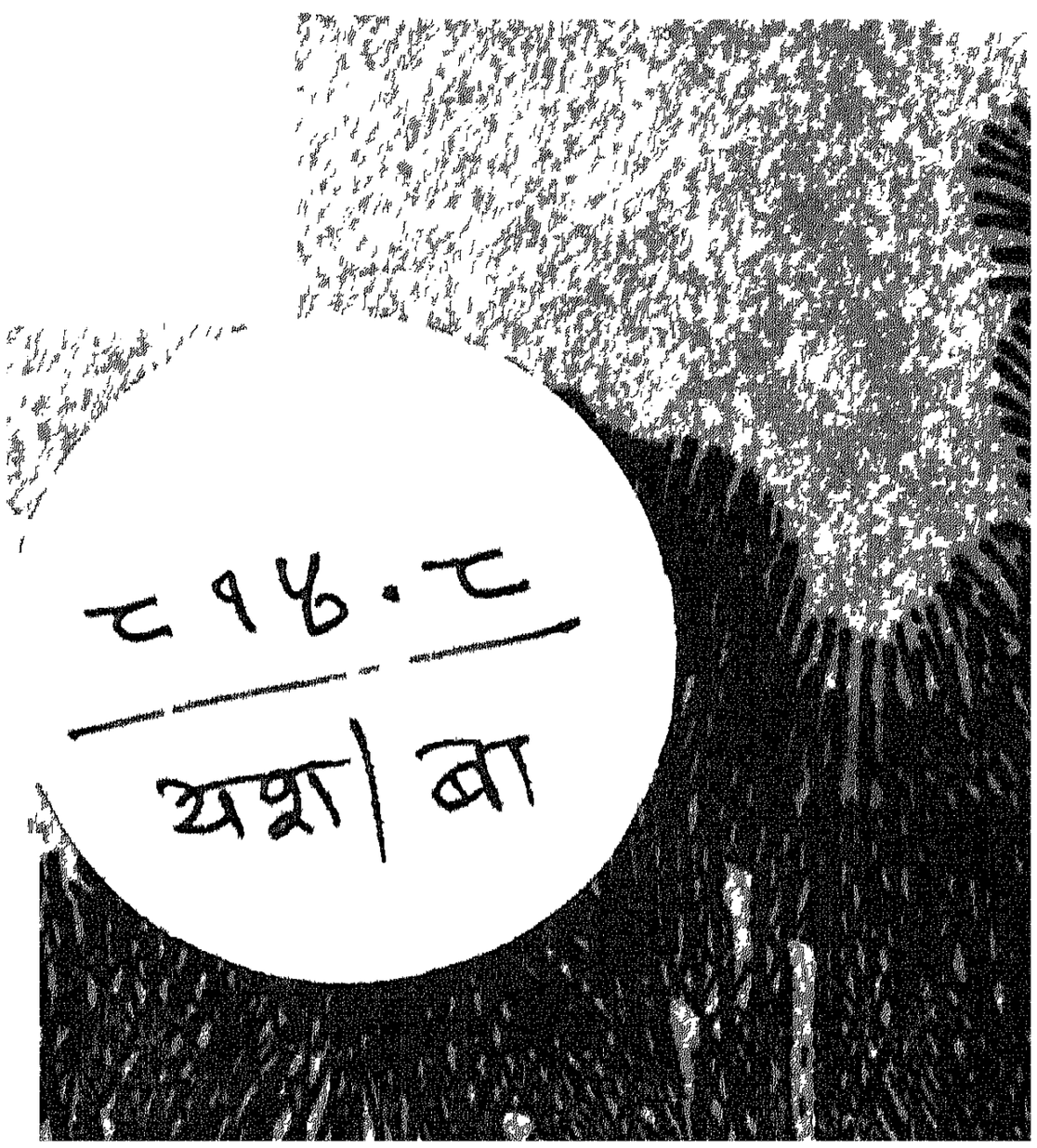

८१५.८
अश्रा | बा

बात-बात में बात

कथात्मक वार्ताएं

बात-बात में बात

(कथात्मक वार्ता में महत्वपूर्ण समस्याओं का विवेचन)

यशपाल

विप्लव कार्यालय, लखनऊ की ओर से

लोकभारती प्रकाशन

१५-ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

BAAT-BAAT MEIN BAAT by Yashpal

कॉपीराइट
विप्लव कार्यालय, लखनऊ

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग,
इलाहाबाद-१ द्वारा
विप्लव कार्यालय लखनऊ
की ओर से प्रकाशित

●

पंचम संस्करण : १९८२

●

मूल्य : २०.०० रुपये

●

इलाहाबाद प्रेस
३७०, रानी मंडी,
इलाहाबाद-३ द्वारा मुद्रित

समर्पण

ज्यों केले के पात-पात में पात,
त्यों सज्जनन् की बात-बात में बात ।

यशपाल

प्रसंग

१—साहित्य का प्रयोजन और रूप :

साहित्य के दो रूप—शुद्धसाहित्य और जनसाहित्य। साहित्य और प्रचार। विचार-शून्य साहित्य और प्रचार-पूर्ण साहित्य, जहाँ विचार वहाँ प्रचार। विचार-शून्य साहित्य ही कला नहीं हो सकता है। कला के लिये कला। सौन्दर्य पदार्थ का गुण है या स्वयं लक्ष। हमारे प्राचीन साहित्य में शासक श्रेणी के अधिकारों का समर्थन, स्त्री पर पुरुष की सत्ता का समर्थन, स्वामी-भक्ति का समर्थन और प्रचार। परिवर्तनशील समाज और शाश्वत सौन्दर्य। प्राचीन भारतीय साहित्य में श्रेणी आधार और भावना। सौन्दर्य की कल्पना के भिन्न आदर्श—शासकवर्ग की निरंकुश भोग की कल्पना, शोषितवर्ग की मुक्ति कामना, मध्यम श्रेणी का पलायनवाद, व्यक्तिगत आत्म-लिप्ति और अभाव में सुख की कल्पना। प्रगतिशील साहित्य का ध्येय। पृष्ठ—९–३५

२—पूँजीवादी व्यवस्था में मुनाफ़ा कमाने की व्यक्तिगत स्वतंत्रता :

समाज में सम्मान और शक्ति का आधार—शारीरिक बल और सम्पत्ति का बल, श्रम-शक्ति का अपमान और सम्पत्ति की प्रतिष्ठा। सम्पत्ति के लिये संघर्ष और उसकी दासता। उत्पादन का साधन सम्पत्ति है या श्रम ? मुनाफा। श्रम की चोरी और धन की चोरी। मुनाफे के अधिकार की स्वतंत्रता समाज विरोधी, सामाजिक विषमता और बेईमानी का कारण हैं। हिंसा। सामूहिक-शक्ति द्वारा न्याय की स्थापना ही क्रान्ति है। पृष्ठ—३६–५५

३—पूंजीवाद की भोग्य-महिला और समाजवाद की आत्म-निर्भर नारी :

समाज में स्त्री और पुरुष की तुलनात्मक स्थिति। स्त्री की आर्थिक पराधीनता, स्त्री की सामाजिक दासता का कारण। प्राचीन संस्कृति में स्त्री का स्थान। मातृत्व के सम्मान का प्रपंच। स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता और परिवार। स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता से समाज में आर्थिक

विषमता की आशंका । स्त्री के सौन्दर्य की पूंजीवादी धारणा । नारी व्यक्तिगत या सामाजिक सम्पत्ति । समाजवाद मे नारी की स्थिति ? स्त्री की आत्म-निर्भरता के प्रति पूजीवादी संस्कृति का विरोध । समाज-वादी व्यवस्था और स्त्री की आर्थिक आत्म-निर्भरता का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध । पृष्ठ—५६–७४

४—राम-राज और मज़दूर-राज की नैतिकता

समाज के जीवन का आधार उत्पादन, मनुष्य के श्रम और यंत्रो द्वारा उत्पादन । यत्रो द्वारा उत्पादन से सामाजिक व्यवस्था मे परि-वर्तन । नैतिकता का आधार समाज के आर्थिक सम्बन्ध है । नैतिकता का व्यक्तिगत और सामाजिक दृष्टिकोण । नैतिकता का आध्यात्मिक और भौतिक आधार । नैतिकता के शाश्वत और परिवर्तनशील रूप । द्वन्द्व द्वारा नैतिकता का विकास । समाज का नैतिक विकास या पतन । पूजीवादी प्रजातंत्र की असलियत । नैतिकता के गाधीवादी और मार्क्स-वादी रूप । राजनीति का साम्प्रदयिक और आर्थिक आधार । नैतिकता और संस्कृति का देशी-विदेशी दृष्टिकोण । पृष्ठ—७५–११४

५—राम-राज का प्रजातंत्र और मज़दूर तानाशाही :

आर्थिक और राजनैतिक समस्याओ का व्यक्तिगत और सामाजिक दृष्टिकोण। सामाजिक समस्याओ का पूजीवादी और समाजवादी दृष्टिकोण। जनता की सरकार या सरकार की जनता ? भौतिक संतोष और आत्मिक शान्ति ? पूजी के अधिकार का न्याय । क्रान्ति के विरोध मे गाधी जी की ब्रिटिश शासन को सहायता । गांधीवाद पर समाजवादी क्रान्ति का आतंक । स्वराज्य या देशी-विदेशी पूजीपतियो मे हिस्सा बाट का सम-झौता । देश का औद्योगीकरण ? रामराज और मजदूर तानाशाही । तानाशाही और सत्य-अहिंसा ? मुनाफा या समाज की हत्या का अधि-कार ? मध्यम-श्रेणी का स्थान और भविष्य ? क्रान्ति का स्वाभाविक मार्ग । हड़ताल की नैतिकता और अनैतिकता ? मज़दूर-श्रेणी की चेतना और कर्तव्य बुद्धि । पृष्ठ—११५–१६२

परिचय

बात-बात में जब बात पक्की हो जाती है तो पण्डितों की भाषा में उसे 'वाद' कहते हैं। बात के दो छोर होते हैं, एक आरम्भ का दूसरा अंत का। जब बात फैल जाती है तो उसके आदि-अंत में द्वन्द्व होने लगता है। उससे नयी बात या नया ज्ञान पैदा होता है। ज्ञानी लोग बात से घबराते नहीं, उससे ज्ञान प्राप्त करते हैं।

बात का मूल्य और अर्थ कहने वाले पर भी निर्भर करता है इस-लिये चक्कर क्लब में बात करने वालों का संक्षिप्त परिचय श्रोताओं या पाठकों को देना उपयोगी है :—

जिज्ञासु : पढ़े-लिखे बहुत काफी हैं। तरह-तरह की परस्पर मत-विरोधी पुस्तकें और विचार पढ़ते रहने के कारण अपना मत स्थिर नहीं है। जानने की इच्छा उनका स्वभाव या चस्का बन गया है।

राष्ट्रीयजी : भारत को संसार का गुरू विश्वास करते हैं। प्राचीन भार-तीय संस्कृति के अनन्य समर्थक हैं। उसी के पुनरुत्थान में देश का कल्याण समझते हैं। समाजवाद और कम्युनिज्म को भारतीय भावना और संस्कृति का शत्रु और नाशक समझते हैं। हिन्दूराष्ट्र के समर्थक हैं।

वैज्ञानिक : परम्परागत नैतिक सिद्धान्तों अथवा विश्वासों को सत्य की कसौटी नहीं मानते। भौतिक-विज्ञान और समाज के अनु-भवों के अनुसार ही नैतिकता का भी विश्लेषण और निश्चय करने के समर्थक हैं।

शुद्धसाहित्यिक : जीवन में साहित्यिक आनन्द से ऊँची कोई वस्तु स्वीकार नही करते। साहित्य का उद्देश्य स्वत साहित्य को और उससे चरम मानसिक आनन्द की प्राप्ति ही मानते है।

प्रगतिशील : साहित्य को जीवन की भौतिक तथा मानसिक पूर्णता का और सामाजिक तथा राजनैतिक उद्देश्यो की पूर्ति का साधन मानते हैं।

सर्वोदयी : भारतीय और आध्यात्मिक संस्कृति की गांधीवादी व्याख्या के समर्थक है। देश और संसार का कल्याण सत्य अहिंसा के गांधीवादी दृष्टिकोण द्वारा ही सम्भव समझते है।

इतिहासज्ञ : प्रत्येक प्रसंग की विवेचना इतिहास के आधार पर करते हैं।

मार्क्सवादी : तर्क में द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी मार्ग को मानते हैं। सामाजिक, साहित्यिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं को आर्थिक आधार और श्रेणी संघर्ष की कसौटी पर जांचते है।

कामरेड : विचारधारा मार्क्सवादी है परन्तु बातचीत मे दाव-पेच से नही, अपना मत ही सत्य और निर्णयात्मक समझते है।

श्रीमती जी : एम० ए० तक पढ़-लिख कर गृहस्थी चलाती है। कलात्मक रुचि है, पढने लिखने का शौक है, तर्क का चस्का है। विश्वास और तर्क के मिले-जुले मार्ग पर चलती है।

महिला : प्राचीन भारतीय नारी के आदर्श की समर्थक है परन्तु स्त्रियों के लिये पुरुषों के समान अधिकार की पक्षपाती भी है।

भद्रपुरुष : बहस में झगड़े से बहुत घबराते है परन्तु बहस के बिना रह भी नही सकते। नित्य दो समाचार पत्रो को आद्योपांत पढ़ते है।

कांग्रेसी : कांग्रेसी-सरकार के समर्थक, धनी और कारोबारी सज्जन हैं। समाजवाद और क्रान्ति से घबराते हैं।

मौजी : नौकरी पेशा आदमी हैं। दुतरफा बात करते हैं। गाने का शौक है। फिल्मी तरज़ों की नकल हू-बहू कर लेते हैं। मज़ाक गहरा और अर्थ पूर्ण करते हैं।

प्रथम संस्करण : अगस्त १९५०

● ●

१

साहित्य का प्रयोजन और रूप

समाजवादी, राष्ट्रीय, प्रगतिवादी, शुद्धसाहित्यिक, सर्वोदयी और कामरेड तथा जिज्ञासु जैसे भिन्न मत और विश्वास के लोग जहाँ जुट जायें, वहाँ बहस और विवाद के सिवा और क्या होगा ? अनेक बातों मे घोर मतभेद होने पर भी 'चक्कर क्लब' मे इस बात पर मतैक्य या सर्वसम्मति है कि 'वादे वादे जायते तत्व बोध.' अर्थात् बात-बात में 'बात' निकल आती है। इसलिये अनेक अवसरो पर तुमुल सघर्ष हो जाने पर भी 'चक्कर क्लब' मे वाद-विवाद का क्रम बना ही रहता है।

जब कभी कोई गम्भीर विषय विवाद के लिये चालू नही रहता तो चलती फिल्मो की ही चर्चा होने लगती है। आजकल के नागरिक जीवन मे बातचीत का इससे सुलभ प्रसंग और हो ही क्या सकता है ?

मौजी किसी फिल्म की चर्चा करने के बाद गुनगुना रहे थे—

"मै भौरा तू फूल, यह मत भूल
जवानी लौट के आये न।
यह जीवन मुझको प्यारा.. "

जिज्ञासु ताल पर चुटकी बजाते हुये झूमने लगे और सहसा बोल उठे, "भाई खूब, कितनी सच्ची कितनी सीधी और जोरदार बात कह दी है ?"

प्रगतिवादी ने समर्थन किया, "जी, इसका पूरा असर इसके सीधे-प न मे है। यही बात क्लिष्ट शब्दो मे कहिये, वह बात नही आयेगी।"

मौजी अपने गाये गीत की प्रशंसा से उत्साहित हुये और जरा ऊँचे स्वर में दूसरी गज़ल गाने लगे :—

"तकदीर बनी बन कर बिगड़ी
दुनिया ने हमें बरबाद किया "

"गौरव तो हमें अपने प्राचीन साहित्य का बहुत है" वैज्ञानिक बोले, "परन्तु रस सभी को आता है आजकल की ही चीजों में। जादू वह जो सिर पर चढ़कर बोले ! आपके कालिदास, सूर, तुलसी, गालिब, इकबाल, पंत, बच्चन, निराला की चीजें तो कोई सड़कों पर गाता नहीं फिरता। सिनेमा की इन चीजों में कुछ शक्ति है जो लोग-बाग का दिल पकड़ लेती हैं। हमारा साहित्यिक उस बात को क्यों नहीं पकड़ता ?"

वैज्ञानिक की बात के उत्तर में शुद्धसाहित्यिक मुस्करा दिये।

जिज्ञासु उन्हें सम्बोधन कर बोले, "कहिये, कहिये, आप कहिये ?"

शुद्धसाहित्यिक मुस्कराते हुये होठों से बोले, "मेघ से जल बरसता है। वह जल हिमाच्छादित पर्वत शृंगों पर सूर्य की रश्मियों में हीरे के समान ज्योतिर्मय होता है। उसी मेघ से जल बरसता है साधारण ग्राम की भूमि पर भी और गँदला होकर नालियों में बह जाता है। इसी प्रकार साहित्य और कविता के दो रूप हैं।"

उपमा, कविता और साहित्य के विश्लेषण से श्रीमती जी का चेहरा प्रशंसा से खिल उठा परन्तु उसी बात से कामरेड उत्तेजित होकर बोले, "यानि आप जनता द्वारा समझे जा सकने वाले साहित्य को गँदला जल कहते हैं ?"

वैज्ञानिक बीच में बोल उठे। शुद्धसाहित्यिक को उन्होंने सम्बोधन किया, "आपकी उपमा बहुत ऊँची है परन्तु श्रीमान् गाँव की भूमि पर बरसने वाले मेघ का जल गँदला होकर खेतों में समा जाता है और अन्न पैदा करता है। हिमाच्छादित पर्वत शृंग पर बरस कर बह जाने वाला जल केवल चमका ही करता है। जब पर्वतशृंग उसका बोझ सम्भाल

नही पाता तो वह ग्लेशियर (हिमशिला) के रूप में गिर पडता है और नदियों मे संहारकारी बाढ़ आ जाती है। हमें गाँव की भूमि पर बरसने वाले जल से ही अधिक प्रयोजन है।"

धूप मे चमकते हिमश्रृंगो पर गँदला जल छींट दिया जाने से श्रीमती जी के चेहरे पर आ गयी प्रसन्नता की चमक की जगह गम्भीरता का बादल छा गया।

कामरेड ने गर्दन ऊँची कर समर्थन किया, "ठीक तो है, हमें जनता के लिये साहित्य चाहिये, साहित्य केवल महलो की ही चीज नहीं है?"

"नही केवल इतना ही नही" प्रगतिवादी ने संशोधन किया, "गाँवों की भूमि पर बरसने वाला जल बेढंगे तौर पर बह कर गाँव के मकानों की नीवो मे मार कर सकता है, बहुत से खेतों की फसल बहा ले जा सकता है और गढ़ों मे बेमौका ठहरा रहकर बाद मे मलेरिया पैदा कर सकता है। वर्षा के जल को हानिकारक न होने देकर लाभदायक बनाने के लिये सचेत रहना पड़ता है, बाध भी लगाने पड़ते है और नालियां भी खोदनी पड़ती है। वर्षा प्रकृति की देन है, साहित्य मनुष्य की अपनी रचना है। साहित्य के लिये तो और भी सचेत व्यवहार की आवश्यकता है।"

"यानि, उसे प्रचार और प्रोपेगैण्डा बना देने की आवश्यकता है!" शुद्ध साहित्यिक हाथ फैलाकर बोले और जोर से विद्रूप का कहकहा लगा दिया।

उनके अट्टहास से प्रगतिवादी को झेपते देख कर मार्क्सवादी ने अपने नये जलाये सिगरेट से एक कश खीच कर पूछा—"अच्छा आप ही बताइये, साहित्य प्रचार नही तो क्या है?"

"साहित्य है सौन्दर्य की अनुभूति।" अपनी रीढ पर तन कर शुद्ध-साहित्यिक ने अपने उत्तर की व्यापकता प्रकट करने के लिये दोनो बाहें दूर तक फैला दी।

मर्म की इस बात को सभी लोग गम्भीरता से सुन रहे थे। मार्क्सवादी ने उस गम्भीरता की उपेक्षा कर मुस्कराते हुये पूछा, "सौन्दर्य की

अनुभूति या सौन्दर्य की अभिव्यक्ति ?''

''एक ही बात है; अनुभूति या अभिव्यक्ति, अभिव्यक्ति या अनुभूति'' शुद्ध साहित्यिक ने सिर हिलाकर अपने फैले हुये हाथ ऊपर उठा दिये।

सर्वोदयी ने भी सिर हिलाकर उनका समर्थन किया, ''हाँ, एक ही बात है, मर्म की बात है न ! हाँ एक ही तो बात है।''

वैज्ञानिक ने ऊँचे स्वर में विरोध किया, ''एक बात आप कैसे कह सकते हैं ? एक समय आप कुछ अनुभव करते हैं और उसे अभिव्यक्त या जाहिर नहीं करते। दूसरे समय दूसरे की अभिव्यक्ति सुनकर अनुभव करने लगते हैं। अनुभूति आपके मन की वस्तु है परन्तु अभिव्यक्ति एक सामाजिक वस्तु है। साहित्य को अभिव्यक्ति कहेंगे। उसका प्रयोजन है, अपनी अनुभूति को प्रकट करना, अपनी अनुभूति का भाग दूसरों को देना; अनुभूति को सामाजिक रूप देना।''

''हां, हां; ठीक है।'' शुद्धसाहित्यिक ने उदारता से स्वीकार किया, ''पर बात दो नहीं; बात एक ही है। वही बात न; सौन्दर्य और आनन्द की सृष्टि करना और उसका विस्तार करना।''

''परमात्मा के सत्य सौन्दर्य का और अहिंसा तथा प्रेम का विस्तार।'' सर्वोदयी ने अपनी बात जोड़ दी।

''किसी भी विचार का विस्तार प्रचार है।'' वैज्ञानिक ने तर्क किया।

मार्क्सवादी उन दोनों की उपेक्षा कर बोल उठे, ''परन्तु उस सौन्दर्य और आनन्द का एक दृष्टिकोण या प्रयोजन तो होना चाहिये।''

''वाह !'' सर्वोदयी जी ने उत्तर दिया, ''सौन्दर्य और आनन्द का, प्रेम और अहिंसा का प्रयोजन क्या और दृष्टिकोण क्या ? वह तो स्वतः चरम लक्ष्य है। वह कोई सांसारिक संघर्ष की वस्तु तो है नहीं।''

''ठीक, ठीक'', शुद्धसाहित्यिक ने जोर से समर्थन किया, ''सौन्दर्य और आनन्द का क्या लक्ष्य ? वही तो परम लक्ष्य है, परम सुख है। सौन्दर्य के लिये सौन्दर्य की उपासना, निष्काम उपासना; इसी को कला के लिये कला या 'आर्ट फार आर्ट सेक' कहते हैं। यही है साहित्य का

लक्ष्य 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् !' उन्होंने विजय के सतोष से सब ओर देखा और उन्हे श्रीमती जी और महिला के चेहरो पर अपनी बात का प्रभाव दिखाई दिया ।

मार्क्सवादी इस बात से संतुष्ट नही हुए और सिर हिलाकर बोले — "सौन्दर्य ? सौन्दर्य तो पदार्थों और भावो का गुण है । सौन्दर्य को आप पदार्थ और भाव से अलग नही कर सकते । कोई पदार्थ या भाव ही सुन्दर हो सकता है । जैसे पदार्थ के बिना सौन्दर्यबोध नही हो सकता वैसे ही उद्देश्य या भाव को प्रस्तुत किये बिना कला की अनुभूति और अभिव्यक्ति नही हो सकती । कला के लिये कला या आर्ट फॉर आर्टसेक एक निस्सार बात है, जैसे सौन्दर्य केवल पदार्थों का गुण है, स्वयं कोई वस्तु नही है वैसे ही साहित्य की कला विचारो का सुगढ़ अभिव्यक्ति-मात्र ही है, स्वयं कोई वस्तु नही है । कलाकार कला के लिये कला की बात उस समय कहता है जब वह अपनी कृति मे विफलता अनुभव करता है, उसे निष्प्रयोजन होता देखता है और अपने निष्फल प्रयत्न को ही लक्ष्य बता कर संतोष पाना चाहता है । स्तालिन के शब्दो मे — कलाकार मानव आत्मा का इंजीनियर है । उसकी कला का उद्देश्य 'कला' या मन बहलाव ही नही परन्तु समाज का भौतिक और सास्कृतिक कल्याण होना चाहिये ।"

जिज्ञासु ने शान्त स्वर में प्रश्न किया, "यदि कला का उद्देश्य समाज का निर्माण, विकास और कल्याण ही हो तो फिर विधि-निषेध की पुस्तको, नीति-ग्रथों और साहित्य मे क्या अन्तर रह जायगा ?"

"हाँ हाँ ।" शुद्धसाहित्यिक उनकी बात लेकर बोले, "फिर तो साहित्य 'नुस्खा' और 'स्लोगन' ही हो जायेगा जैसा कि कम्युनिस्ट साहित्य होता है । साहित्य का वास्तविक गुण और प्रयोजन तो सौन्दर्य की रचना और अभिव्यक्ति ही है । उसे प्रचारात्मक बना देने से ऐसा गुण उसमें कहाँ रहेगा ? आप अपना प्रचार करते रहिये, राजनैतिक

और सामाजिक संघर्ष भी चलाइये परन्तु साहित्य के सौन्दर्य को प्रचार से कलुषित न कीजिये।"

"कोई साहित्य प्रचार रहित नहीं हो सकता।" मार्क्सवादी गम्भीरता से बोले, "उद्देश्यों, आदर्शों और विचारों की कलापूर्ण अभिव्यक्ति या विचारार्थ समस्याओं की ओर कलापूर्ण ढंग से ध्यान दिलाना ही साहित्य है। विचारों को प्रकट करना यदि प्रचार है तो सम्पूर्ण प्रभावशाली साहित्य प्रचारात्मक साहित्य है। केवल विचार-शून्य साहित्य ही प्रचार-शून्य अथवा कला मात्र के लिये हो सकता है। यह बात दूसरी है कि कोई प्रचार आपको सुहाता है, कोई प्रचार आप को दुखाता है। हमारा प्राचीन साहित्य उस समय की सामाजिक व्यवस्था के प्रति श्रद्धा का और उस समय की शासक श्रेणी के अधिकारों का समर्थन और प्रचार ही तो था।"

शुद्धसाहित्यिक, सर्वोदयी और राष्ट्रीयजी ने मार्क्सवादी का विरोध किया, "यह आप क्या कह रहे हैं?"

शुद्धसाहित्यिक ने आँखें फैलाकर पूछा, "अमूल्य रत्नों के भण्डार भारत के गौरवमय साहित्य को आप शासक श्रेणी के अधिकारों का प्रचार बता रहे हैं?"

सर्वोदयी जी ने दुहाई दी, "साहित्य में भी आप श्रेणी संघर्ष का विष भर रहे हैं?"

जिज्ञासु ने भी प्रश्न किया, "उस साहित्य में आप श्रेणी संघर्ष और श्रेणी पक्षपात कहां पाते हैं?"

मार्क्सवादी चुनौती स्वीकार कर अपने स्थान से एक बालिस्त आगे हो गये और बोले, "सुनिये, रामायण की कथा है कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा से तपस्या करने वाले शूद्र का सिर काट कर पृथ्वी से पाप का बोझ हल्का किया और इस न्याय से देवता भी प्रसन्न हो गये। क्या इसका स्पष्ट प्रयोजन यह नहीं है कि शूद्र का तपस्या करके ब्राह्मण के समान बनने की इच्छा करना अपराध

है, पाप है, शूद्रों की महत्ता द्विजों की सेवा करने में ही है। शूद्र यदि सेवाधर्म छोडकर तप का धर्म अपनाये तो उसे दण्ड दिया जाना चाहिये। यह ब्राह्मण के तपस्या अथवा आध्यात्मिक चिन्तन के अधिकार की ठेकेदारी का और शूद्र के लिये सेवाधर्म का प्रचार नही तो क्या है ?''

कामरेड बोले, ''और प्रजा ने या शूद्रों ने इस बात पर सभा करके या जुलूस निकाल कर कोई असन्तोष भी प्रकट नही किया। रामचन्द्र जी थे, मर्यादा या मार्ग दिखाने वाले। बाल्मीक ने रामचन्द्र जी के व्यवहार के रूप में यह एक आदर्श उपस्थित किया है। इतिहास साक्षी है कि सैकड़ों वर्ष तक इस आदर्श का पालन होता भी रहा है। कितना प्रबल और प्रभावशाली प्रचार था यह ? हम पूछते हैं, 'काग्रेसी रामराज्य' में आज यदि राष्ट्रपति ऐसा करे तो आप सह जाइयेगा ?''

''क्या बेतुकी बात करते हो जी ?'' राष्ट्रीयजी ने कुछ बिगड़ कर डाटा, ''उस समय के समाज और संस्कृति से आज की परिस्थिति की क्या तुलना ?''

''यही तो हम कहते है कि उस समय के समाज और संस्कृति से आज की परिस्थितियों की तुलना नही और उनमें कोई सम्बन्ध भी नही।''

इतिहासज्ञ बोले, ''परन्तु महाराज, आप ही उस संस्कृति की पुनः स्थापना करना चाहते है। आपके पटेल साहब आज भी उपदेश देते है कि राजत्व का सम्मान करना भारतीय संस्कृति की परम्परा है। आज राजत्व का अधिकार उनके हाथ में है। वे मर्यादा पुरुषोत्तम की भाँति ही निरंकुश होकर अपने न्याय की स्थापना करना चाहते हैं इसीलिये वे रामराज्य का आदर्श हमारे सामने पेश करते है परन्तु ये निरंकुश रामराज्य किसके लिये सुविधाजनक होगा ? प्रजा के लिये या शासक के लिये ?''

''बात साहित्य की हो रही है,'' भद्र पुरुष ने टोका, ''राजनीति को आप बीच में क्यों लाते हैं।''

"राजनीति न सही," प्रगतिवादी बोले, "साहित्य की ही बात कीजिये। बाल्मीक, स्त्री-चरित्र के आदर्शरूप सती सीता को उपस्थित करते हैं। रामचन्द्र को सीता के सतीत्व पर झूठा सन्देह हो गया और सीता जी आग में जलकर मरने के लिए तैयार हो गयीं। वे अनुकरणीय इसलिये हैं कि उन्होंने पति से अपने सतीत्व के प्रति सन्देह का कारण पूछने की भी धृष्टता नहीं की, अन्याय के विरुद्ध दुहाई नहीं दी क्योंकि पति तो परमेश्वर है। उसकी इच्छा ही स्त्री का धर्म है। वे सती थीं इसलिये उन्हें अग्नि जला नहीं सकी। आप ही बताइये, स्त्री के लिये पति की परम दासता का इससे बड़ा प्रचार और क्या होगा? इस प्रचार के परिणाम में इस देश में स्त्रियों को सती किया गया या नहीं? आजकल अग्नि तो क्या, गरम तवा या गरम घी-तेल का छींटा ही पतिव्रताओं और सतियों के बदन में छाले डाल देता है परन्तु पतिव्रत धर्म के प्रचार की आवश्यकता अब भी शेष है। कहिए, यह साहित्य प्रचारात्मक है या नहीं?"

"इसे आप प्रचार कहते हैं? यह प्रचार नहीं, यह जीवन का सत्य और आदर्श है।" सर्वोदयी जी बोले, "प्रचार में स्वार्थ और हिंसा की भावना होती है। यह मनुष्य के अन्तःकरण में भगवान द्वारा शाश्वत धर्म की प्रेरणा है।"

"जी!" कामरेड ने सिर हिलाकर पूछा, "तपस्या करने वाले शूद्र का सिर काट लेना भगवान की प्रेरणा है, अछूतों का मन्दिर-प्रवेश कराना भी भगवान की प्रेरणा है? पति के झूठे सन्देह में स्त्री को आग में जला देना भी ईश्वरीय प्रेरणा है और स्त्री को माता और देवी कह कर फुसलाना और पति की दासता के गर्व का उपदेश देना भी ईश्वरीय प्रेरणा है?"

"यह तो आप के मन में हिंसा और द्वेष की प्रवृत्ति बोल रही हैं।" करुणा का भाव चेहरे पर लाकर सर्वोदयी जी ने समझाया।

राष्ट्रीयजी इस से संतुष्ट न होकर ऊँचे स्वर में बोले, "यह तो

काल धर्म है। धर्म देश, काल और पात्र के अनुसार होता है।"

"साहित्य भी देश, काल और पात्र के अनुसार होता है!" कामरेड ने फुलझडी छोड दी।

"यदि धर्म देश, काल के अनुसार होता है तो वह शाश्वत नही हो सकता!" मार्क्सवादी ने अपना 'तुप' का पत्ता फेक दिया।

सर्वोदयीजी उनके तर्क का उत्तर देने के लिए बोले—"देश और काल के परिवर्तनो के बावजूद धर्म और सत्य का मूल तत्व 'सत्य और अहिसा' भगवान की प्रेरणा होने के कारण शाश्वत ही है।"

"अच्छा सुनिये!" प्रगतिवादी आगे बढ़े, "यदि सत्य का मूल शाश्वत है तो 'सत्य हरिश्चन्द्र' मे जिस सत्य का आदर्श आप के सामने रखा गया है, क्या उसका पालन आज भी कीजियेगा? राजा हरिश्चन्द्र 'सत्य' का सबसे बडा आदर्श इसलिये हैं कि उन्होने ब्राह्मण को दान देने की स्वप्न में की हुई प्रतिज्ञा को भी पूरा करने के लिये अपना सर्वनाश कर लिया। उस पुण्य कार्य के प्रभाव से वे सदेह स्वर्ग चले गये। वे सदेह स्वर्ग इसलिये चले गये कि ब्राह्मण को संतुष्ट करने के लिये उन्होने अपनी स्त्री तक को बेच डाला। कहिये, यह ही आदर्श शाश्वत सत्य है? ब्राह्मण के आधिपत्य मे यह आदर्श अवश्य शाश्वत सत्य रहा होगा। इस प्रचार का परिणाम है कि आज भी भक्त लोग स्वर्ग प्राप्ति के लिये काशी, हरिद्वार में गोदान तथा पत्निदान करते है; चाहे बाद में पत्नी को दो-चार या दस-पॉच रुपये मे खरीदकर लौटा लेते है। कहिये, आज इस आदर्श का पालन कीजियेगा? स्त्रियां भी स्वर्ग जाना चाहती हैं। क्या उन्हें भी अधिकार दीजियेगा कि स्वर्ग प्राप्ति के लिये पति का दान करदे?"

खैर, हरिश्चन्द्र सदेह स्वर्ग इसलिये चले गये कि सेवक होकर स्वामी-भक्ति का धर्म पूरा करने के लिये, स्वामी के लिये कर उगाहने का धर्म पूरा करने के लिये उन्होने मृत सन्तान को गोद मे लिये, पुत्र शोक मे बिलखती माता तक के शरीर से आधी साडी फड़वा ली। आज

भी मज़दूर आन्दोलन को तोड़ने के लिये, स्वामी-भक्ति के और नमक-हरामी द्वारा परलोक न बिगाड़ने के उपदेश दिये ही जाते हैं। हम पूछते हैं, ऐसे धर्म का पालन करने वाले व्यक्ति के लिये आज आप के समाज में कौन स्थान है? और आज आप उसे किन शब्दों से पुकारियेगा? परन्तु राजा हरिश्चन्द्र को आप आज भी आदर्श मानते हैं और उसकी कथा को साहित्य का शाश्वत सौन्दर्य कहना चाहते हैं। मनुष्य के शोषण को पाप समझने वाला व्यक्ति इस कथा के विषय में क्या कहेगा?"

"दासता के धर्म के प्रचार का इससे अधिक स्पष्ट उदाहरण आप और क्या चाहते हैं?" कामरेड ने उत्तेजना से पूछा, "यह प्रचार नहीं तो क्या है? शासक और शोषक श्रेणी के अधिकारों के समर्थन का इससे अधिक नंगा प्रचार आप और क्या देखना चाहते हैं?"

शुद्धसाहित्यिक खिन्नता से सिर हिलाकर बोले, "करुण रस के विपाक की आदर्श इस कहानी में आप करुणा रस का आनन्द न लेकर शोषण का समर्थन देख रहे हैं?"

"वाह रे आनन्द?" कामरेड ने उग्र स्वर में विरोध किया, "आप आनन्द की बात कहते हैं। ऐसा अत्याचार सुन कर हमारा तो खून जल जाता है।"

शुद्धसाहित्यिक इनकी परवाह न कर अपनी बात कहते गये, "यह आपकी श्रेणी-संघर्ष की हिंसा-वृत्ति का परिणाम है, कहानी का दोष नहीं। वर्ना यह कहानी तो निश्चय ही साहित्य के शाश्वत सौन्दर्य का अति सुन्दर उदाहरण है।"

"ठीक है।" वैज्ञानिक बीच में बोले, "आपको राजा हरिश्चन्द्र की धर्मपरायणता में शाश्वत सौन्दर्य दिखाई देता है और शोषण के विरोधी को, दास श्रेणी को बांधने और अत्याचार सहने के लिये विवश करने वाली व्यवस्था की वीभत्सता दिखाई देती है। यह अपनी-अपनी परिस्थितियों और हित के आधार पर बने दृष्टिकोणों का अन्तर है।"

सर्वोदयीजी और शुद्धसाहित्यिक ने सिर हिलाकर वैज्ञानिक की व्याख्या को स्वीकार करने से इनकार कर दिया।

शुद्धसाहित्यिक बोले, "सौन्दर्य के बारे में दृष्टिकोण का क्या झगडा, श्रेणी का क्या प्रसग ! श्रेणी राजनीति और आर्थिक झगड़ो के क्षेत्र की बात है; सौन्दर्य से उसका क्या सम्बन्ध ? जो सुन्दर है, वह चिर सुन्दर है, वह शाश्वत सौन्दर्य है। चाँद की रुपहली, दूध बरसाती चाँदनी और ऊषा की लाली के सौन्दर्य के विषय मे दृष्टिकोण का क्या प्रश्न ?"

वैज्ञानिक बोले, "आप कल्पना कीजिये, एक बन्दी की कल्पना कीजिये जिसके लिये उषाकाल मे सिर काट देने की आज्ञा दी गयी हो। उसे ऊषा की लाली कैसी लगेगी ? आपने ईद के मौके पर कुर्बानी का जुलूस तो देखा होगा। बलि के पशु को सजाकर लोग कितनी प्रसन्नता और उत्साह से चलते है। उसमे उन्हे अपूर्व सौन्दर्य दिखाई देता है परन्तु क्या बलि के पशु को भी वह सौन्दर्य संतोष-जनक जान पड़ता होगा ? ऐसे ही आपके ब्राह्मण-समाज को रुचिकर 'सत्य-हरिश्चन्द्र' का शाश्वत सौन्दर्य, दास-समाज के लिये तो शाश्वत अभिशाप ही था।"

सर्वोदयीजी ने शान्त स्वर मे उत्तर दिया, "विकृत मनोवस्था की बात दूसरी है ··"

वैज्ञानिक ने उन्हें टोक दिया, "परन्तु किस की मनोवस्था विकृत है ? जो जीवित रहना चाहता है उसकी या उसकी जो दूसरों को निगल लेना चाहता है ?"

अपने विचारो के अनुकूल वातावरण बनता देखकर प्रगतिवादी आगे बढ़े और अपनी बगल से एक मोटी पुस्तक निकाल कर बोले, "आप अपने प्राचीन साहित्य में श्रेणीगत सौन्दर्य का दृष्टिकोण देखना चाहते हैं तो प्राचीन साहित्य के प्रतिनिधि कवि कालिदास की रचना में ही देखिये। रघुवंश में महाराज सुदर्शन के अग्नि के समान तेजस्वी पुत्र अग्निवर्ण के जीवन का चित्र देखिये ! पुस्तक खोल वे पढ़ने लगे, "वह कामी राजा कामिनियो के साथ उन भवनों मे दिन-रात पड़ा रहने

लगा जिनमें बराबर मृदंग बजते रहते थे और प्रतिदिन एक से एक बढ़ कर ऐसे उत्सव होते रहते थे कि अगले दिन के उत्सव के धूमधड़ाके के आगे पिछले दिन का उत्सव फीका पड़ जाता था।[१] वह सदा रनिवास के भीतर रहकर ही विहार करने लगा। उसके दर्शन के लिये जनता सदा अधीर रहती थी पर वह कभी उनकी सुध न लेता था।[२] यदि कभी मंत्रियों के कहने सुनने से प्रजा को दर्शन भी देता था तो बस इतना ही कि झरोखे से एक पैर बाहर लटका देता।[३] राज-कर्मचारी लाल नखों वाले उसके चरण को नमस्कार कर आराधना करते, जो प्रभात की लाल किरणों से भरे हुये कमल के समान सुन्दर था।"[४]

"कहिये," टोक कर मार्क्सवादी ने शुद्धसाहित्यिक को सम्बोधन किया, "यह अंध राजभक्ति की प्रशंसा है या नहीं? राजभक्ति का प्रचार है या नहीं?"

कामरेड राष्ट्रीयजी की ओर देख गरज उठे—"क्यों साहब, आप इसी संस्कृति का पुनरुत्थान चाहते हैं? ऐसा ही रामराज्य कायम करना चाहते हैं? यह राजा अग्निवर्ण रामचन्द्र जी के ही पूर्वज तो थे न? यही अधिकार प्रजा को रामराज्य में होंगे?"

कामरेड को चुप कराने के लिये उनकी बाँह खींचकर प्रगतिवादी बोले, "और सुनिये, कालिदास अपने 'तेजस्वी' महाराज की प्रशंसा करते हैं, जैसे खिली हुई कमलनियों की गंध से भरे सरोवर में हाथी हथनियों के साथ बैठता है, वैसे ही अग्निवर्ण भी सुन्दरी स्त्रियों के साथ

---

१. रघुवंश : सर्ग १९, श्लोक ५।
२. राजा सुदर्शन महाराज रामचन्द्र के पूर्वज थे। रघुवंश सर्ग १ श्लोक ६,
३. सर्ग १०, श्लोक ७।
४. सर्ग १९; श्लोक ८।

मद्य के गंध से बसी हुई पान शाला या मदिरा-घर में पहुँचता था।[१] वहाँ वे स्त्रियाँ अग्निवर्ण का जूठा मदकारी आसव प्रेम से पीती थी। जैसे मौलसिरी का पेड स्त्रियो के मुख मे आसव पीने की इच्छा करता है, उसी प्रकार उन स्त्रियो के मुख से आसव पीने की इच्छा करने वाला अग्निवर्ण भी उनके मुँह का आसव पिया करता था।[२] गोद मे बैठाने योग्य दो ही तो वस्तुये हैं। एक मनोहर शब्द वाली वीणा और दूसरी मधुर-भाषिणी कामिनी। इन दोनो ने राजा की गोद को सदा ही भर-पूर रक्खा।[३] और सुनिये—कभी-कभी दासिया राजा को मार्ग दिखाती हुईं उस स्थान पर ले जाती जहाँ लताओ के बीच मे सम्भोग के लिए फूलो की सेज बिछी रहती थी। उस समय राजा को यह डर होता कि यह दासियाँ जाकर रानियो से न कह दे इसलिये राजा दासियो को फुसलाने के लिये उन दासियो से भी सम्भोग करके उन्हें प्रसन्न कर देता।''[४]

प्रगतिवादी ने हाथ की पुस्तक बन्द की ही थी कि क्रोध की छाया से मलीन मुख महिलाजी उठ खडी हुई और बोली—' यदि आप लोगों मे स्त्रियो के साथ सभा मे बैठने लायक सभ्यता नही है तो हम यहाँ नही बैठेंगी। हम ऐसी अश्लील बाते सहन नही कर सकती।' वे विरोध में निष्क्रमण (वाकआउट) कर जाना चाहती थी।

श्रीमतीजी को आशका हुई कि प्रोटेस्ट मे 'वाक-आउट' न करने से शायद वे कम शर्मीली और असभ्य समझी जायँगी, इसलिये वे भी उठ खड़ी हुईं।

---

१. रघुवंश : सर्ग १९; श्लोक ११।
२. सर्ग १९, श्लोक १२।
३. सर्ग १९, श्लोक १३।
४. सर्ग १९, श्लोक २२।

सर्वोदयीजी ने इस परिस्थिति से लाभ उठाकर शोक प्रकट किया; "आप लोगों को दूसरों की, विशेष कर महिला समाज की कोमल भावनाओं और सम्मान पर आघात नहीं करना चाहिये। इस घटना से मेरा मन अति खिन्न हुआ है। जान पड़ता है, आपके अपराध के लिये मुझे आज उपवास करना पड़ेगा।"

प्रगतिवादी ने पुस्तक एक ओर पटक दी और क्षमा सी मांगते हुए बोले, "साहब, यह हमने नहीं लिखा है और न कालिदास ही प्रगतिवादी थे। हम तो आपको शुद्धसाहित्यिक जी के चिर, सुन्दर और शाश्वत साहित्य का एक नमूना भर दे रहे थे और यदि आप 'कुमार सम्भव' पढ़ें तो इससे सौ गुना 'असह्य' सुन्दर और शाश्वत साहित्य पाइयेगा।"

शुद्धसाहित्यिक भी प्रगतिवादी को फटकारने के मौके से चूकना नहीं चाहते थे। बोले, "भाई, साहित्य भी मौके-मौके का होता है।"

"सत्यवचन," इतिहासज्ञ बोले, "हम तो यह कहते ही हैं कि साहित्य मौके-मौके का होता है। आप ही उसे शाश्वत बनाते हैं। आपका 'शाश्वत' इस युग के उपयोग की चीज़ नहीं क्योंकि इस युग में सभ्य स्त्री-पुरुष एक साथ बैठते हैं। यह बात तो प्रमाणित हो ही गयी कि आज हमारी मध्यम श्रेणी की महिलाओं की आचार-निष्ठा और शालीनता रामराज्य की रानियों से भी बहुत ऊँची है।"

यह बात सुनकर महिला और श्रीमती जी फिर अपने स्थान पर बैठ गयीं।

इतिहासज्ञ कहते गये, "उस युग में उच्च वंश की स्त्रियों को 'हे सुन्दरी, हे मोहिनी, हे नितम्बिनी'.....क्षमा कीजिये, आई एम सो सारी....कह कर पुकारा जाता था और वे अपना अपमान नहीं समझती थीं। आज यदि किसी महिला को उनके पति की श्रीमती न कह कर उनके अपने नाम से पुकार लिया जाय तो उनका हाथ चप्पल की ओर बढ़ने लगता है।"

"आप कमाल करते है।" श्रीमतीजी ने क्रोध या झेप से गुलाबी होते चेहरे से टोका।

"जी अच्छा; यह भी ठीक नही ?" इतिहासज्ञ ने फिर बात बदली, "मेरा अभिप्राय है कि आज की महिला का व्यक्तित्व उस समय की महिषी के व्यक्तित्व से अधिक उन्नत, विकसित और आत्म-सम्मानपूर्ण है। उस समय का साहित्य केवल पुरुषो के भोग के दृष्टिकोण से लिखा जाता था। पुरुषो से समता के अधिकार का दावा करने वाली स्त्रियों के सम्मान के दृष्टिकोण से नही !"

जिज्ञासु ने प्रश्न किया, "परन्तु आप तो प्राचीन साहित्य मे श्रेणी-गत दृष्टिकोण दिखा रहे थे।"

"आपको वह दिखाई नही दिया ?" मार्क्सवादी ने कुछ विस्मय से प्रश्न किया, "आप इस साहित्य को दो तरह से देखिये। पहली बात कि ये वर्णन किस श्रेणी और समाज का है। किस श्रेणी और समाज को यह वर्णन रुचिकर और संतोषप्रद जान पड़ता है। आपको इस वर्णन से आनन्द नही मिलता बल्कि ग्लानि होती है। आप ऐसे सुख का स्वप्न भी नही देखते क्योकि आपकी सौन्दर्य की श्रेणीगत कल्पना इससे भिन्न है परन्तु हमारे राजा महाराजा लोग आज भी यह करना चाहते हैं; बस चलने पर करते भी रहे। पटियाला, इंदौर, काश्मीर के महा-राजाओ के नाम इसके लिये प्रसिद्ध थे। तीन पत्नियां होने की कल्पना से आपके रोगटे खड़े हो जायंगे। महाराजा अपने सम्मान के लिये तीन सौ आवश्यक समझते थे। सौन्दर्य भोग की यह उनकी श्रेणीगत, सामन्तवादी भावना थी। अंग्रेज सरकार को उनके इन कारनामों का पता चल जाता था तो वह उन्हें कान पकड़ कर गद्दी से उतार देती थी क्योकि अंग्रेज सरकार सामन्तवाद की नैतिकता और सौन्दर्य की भावना को जहालत समझती थी और पूंजीवादी संस्कृति और आदर्श मे आस्था रखती थी। कालिदास के समय का साहित्य राज्यधिकार भोगने वाली वा सामन्त श्रेणी के नैतिक और सौन्दर्य के आदर्श से

राज दरबार के लिये लिखा जाता था और वहाँ ही इसका रसास्वादन भी होता था···"

इतिहासज्ञ बीच में टोक बैठे, "यहाँ तक कि काव्य और साहित्य में निम्न-श्रेणी का और निम्न-श्रेणी के जीवन का चित्रण भी दोष माना जाता था। काव्य में खेतों में रथ दौड़ा कर शिकार खेलने वाले राजा का वर्णन होना चाहिये था, खेत बनाने और जोतने वाले किसान का नहीं। ऐसे वर्णन से महाराज और सामन्तों को ग्लानि होती थी। जिस चर्खे को आप अपना राष्ट्रीय चिह्न बनाये फिरते रहे, उस चर्खे का और चर्खा कातने वाली का या उपले थापने वाली का वर्णन उस साहित्य में निषिद्ध था। काव्यादर्श और काव्य-दर्पण में लिखा है कि महाकाव्य का नायक धीरोदात्त पुरुष, राजा अथवा देवता होना चाहिए। वह साहित्य निम्न क्या मध्यम श्रेणी के वर्णन को भी निषिद्ध मानता था। वह राजसत्तावादी समाज था। राजा और उसके सामन्त शासक वर्ग का दृष्टिकोण ही उस समय के समाज का दृष्टिकोण था। वहाँ वर्णन होता था केवल भोग्या नारियों का, समान अधिकार माँगने वाली नारियों का नहीं। उन राजाओं के गीत गाये जाते थे जिनके भोग के साधन जुटाने के लिये देश की सम्पूर्ण प्रजा उपस्थित थी। जैसा भोग का वर्णन कालिदास ने किया है, क्या वह सर्व-साधारण जनता के लिये सम्भव हो सकता था?····"

"उस समय ऐसी कंगाली थोड़े ही थी," राष्ट्रीयजी ने बीच में टोक दिया, "उस समय देश सम्पन्न था।"

"सम्पन्न?" इतिहासज्ञ ने पलट कर पूछा, "तो सभी लोग सौ-सौ, पचास-पचास रानियाँ, दूतियाँ और दासियाँ रखते होंगे? तो साहब, वे इन दूतियों और दासियों के प्रति क्या करते होंगे? जिस समाज में दास-प्रथा रही हो, वहाँ समानता और सर्व-साधारण प्रजा की स्थिति का प्रश्न ही क्या? सर्व-साधारण को छोड़िये, ये भोग तो सम्पन्न मध्यम श्रेणी की कल्पना के बाहर की बात है और न यह उनका साहित्य ही है।"

इतिहासज्ञ सांस लेने के लिये चुप हुए थे कि शुद्धसाहित्यिक शान्त मुद्रा में हाथ उठाते हुये बोले, "देखिये, इसीलिये तो हम कहते है कि साहित्य भौतिक जीवन का साधन नहीं, सूक्ष्म मानसिक सुख का साधन और स्रोत है। साहित्य के साधन हल, हथौड़ा, सभा और जुलूस नही, सूक्ष्म कल्पना है। भौतिक जीवन में संतोष और कल्पना में ऊँची उड़ान — 'प्लेन लिविंग एण्ड हाइ थिंकिंग !" उनका एक हाथ अपने सिर से भी ऊँचा आकाश की ओर संकेत करता हुआ उठ गया, "यह है साहित्य का मार्ग !"

कामरेड ने ऊँचे स्वर में टोक दिया, "यानि, साहित्य खामखयाली की पीनक है ?"

"नही," भद्रपुरुष बोले, "साहित्य का जीवन से सम्बन्ध होना तो जरूरी है।"

शुद्धसाहित्यिक ने उसी बात को दूसरे शब्दो मे दोहराया, "साहित्य का सम्बन्ध जीवन से जरूर है परन्तु सौन्दर्य का सुख केवल शारीरिक भोग द्वारा ही नही, कल्पना द्वारा भी लिया जाता है। यही तो मनुष्य और पशु में अन्तर है। कला का आधार तो कल्पना है, इस सत्य को आप क्यो भूल जाते है ?"

"कल्पना के अस्तित्व से इनकार हम नही करते," मार्क्सवादी ने स्वीकार किया, "परन्तु कल्पना मनुष्य के ज्ञान और परिस्थितियो से स्वतन्त्र नहीं हो सकती। उदाहरणतः सभी जानते है कि ब्रिटिश सम्राट एडवर्ड आठवे को इंगलैण्ड की प्रजा ने या पूंजीपति श्रेणी ने मिसेज सिम्पसन से विवाह करने की आज्ञा नही दी। आपको याद है, मिसेज सिम्पसन से विवाह करने के लिये सम्राट को अपना सिंहासन छोड़ना पड़ा। क्या सम्राट जहाँगीर या सम्राट चन्द्रगुप्त या महाराज अग्निवर्ण और दुष्यन्त के समय में भी यह कल्पना की जा सकती थी कि प्रजा सम्राट को किसी स्त्री से विवाह करने से रोक दे ? इस बात की कल्पना केवल प्रजातन्त्र के ही युग में की जा सकती है, सामन्ती युग में नही की जा सकती थी। और उदाहरण लीजिये :

"जिस समाज में विवाह की प्रणाली न हो, वहाँ पतिव्रत धर्म की कल्पना नहीं की जा सकती। जिस समाज में निजी सम्पत्ति और उत्तराधिकार से वंश की सम्पत्ति पर मिल्कियत का रिवाज न हो वहाँ भाग्य से किसी के धनी और निर्धन पैदा होने की कल्पना नहीं की जा सकती। मनुष्य-समाज जिस प्रकार के साधनों से अपने निर्वाह और जीवन रक्षा के लिये आवश्यक पदार्थ पैदा करता है, उसी के अनुरूप उसके समाज का रूप होता है। यदि पैदावार के साधन सामाजिक सम्पत्ति नहीं होंगे तो अवश्य ही कुछ लोग साधनहीन होंगे और कुछ के पास बहुत अधिक साधन होंगे। यही स्थिति समाज को श्रेणियों में बाँट देती है। पैदावार के लिए श्रम साधनहीनों को करना पड़ता है और पैदावार पर मिल्कियत मालिक श्रेणी की होती है। मालिक श्रेणी सदा ही चाहती है कि पैदावार का अधिक से अधिक भाग अपने पास रखे। श्रम करने वाली श्रेणी अपने निर्वाह के लिये पैदावार का भाग माँगती है। यही संघर्ष की जड़ है। एक समय समाज के पास पैदावार के मुख्य साधन के रूप में केवल भूमि ही थी। उस समय भूमिपति ही समाज के मालिक और शासक थे!"

वे कहते गए, "निरंकुश शोषक शासक वर्ग निरंकुश भोग की कल्पना में सुख पायेगा। शोषित वर्ग अपनी मुक्ति के लिये संघर्ष और बन्धनों को तोड़कर आत्मनिर्णय का अवसर पाने की कल्पना से सुख अनुभव करेगा। समान अवसर में विश्वास करने वाला वर्ग ऐसे सुख की कल्पना करेगा जो समाज में सर्व-साधारण के लिये सम्भव हो। इन श्रेणियों के जीवन को चाहे आप व्यक्तिगत क्षेत्र में देखिये चाहे सामूहिक या सामाजिक क्षेत्र में, इनकी प्रवृत्ति आपको श्रेणीगत मनोवृत्ति के अनुकूल ही मिलेगी.....।"

जिज्ञासु ने टोका, "और मध्यम श्रेणी के सुख की कल्पना?"

"वह तो है न, 'हमें तो शामे गम में काटनी है ज़िन्दगी अपनी'.... यह है सुख-स्वप्न मध्यम श्रेणी का।" कामरेड ने उत्तर दिया।

शायद सभी लोग इस रूखी बहस से उकता रहे थे। इशारा पाते ही, महफिल का मूड देखकर मौजी ने लरजती हुई पुरदरद आवाज़ मे गुनगुनाना शुरू कर दिया। गज़ल के दूसरे शेर पर पहुँचे थे कि श्रीमती ने अनुरोध कर दिया, "मौजी साहब, जरा खुलकर गाइये।"

मौजी साहब पूरे उत्साह से गा उठे :—

"अगर कुछ थी तो बस यह थी तमन्ना आखिरी अपनी,
कि तुम साहिल पै होते और किश्ती डूबती अपनी।
खुदा के वास्ते ज़ालिम घड़ी भर के लिये आजा,
बुझानी है तेरे दामन से शमए ज़िन्दगी अपनी।"

समा बँध गया। शुद्धसाहित्यिक झूम गये, "वाह, क्या कल्पना की है; डूबते समय किनारे खड़े प्यारे को देखकर ही संतोष हो रहा है। और फिर प्रेमी के आचल से अपने जीवन का दीपक बुझाने का संतोष! वाह, वाह····कितनी सूक्ष्म कल्पना है और कितनी ऊँची उड़ान है। भौतिक भोग की कल्पना है ही इसमें कहाँ!" उन्होने मार्क्सवादी और प्रगतिवादी को चुनौती दी और विद्रूप से मुस्करा कर बोले, "जाने आपकी यथार्थ और संघर्षवादी कविता क्या होगी?"

कामरेड कब चूकने वाले थे, "सुन लीजिये" उन्होने उत्तर दिया और घूँसा तान कर गर्जन के स्वर में गा उठे—

"एक साथ है कदम, जहान साथ है,
कामगार साथ है, किसान साथ है।
लीडरो न गाओ गीत रामराज का,
इस सुराज का!
क्या हुआ किसान कामगार राज का?
भूख आग है, आग गोलियो से बुझ न पायेगी,
फैल जायेगी॥
जेल भेज दोगे; जेल को जलायेगी,
तख्त ताज, साज-बाज सबको खायेगी।
भूख आग है तुम न समझोगे, बुरी तुम्हारी जात है।"

कामरेड भी गाना जानते थे। आवाज़ बुलन्द और गहरी थी। कमरा गूंज उठा, जैसे मारू बाजा बज गया हो। समा बिलकुल दूसरा हो गया। सब चुप से रह गये। मार्क्सवादी ने चुप्पी तोड़ी :

"बस यह देख लीजिये, दोनों तरह के साहित्य का अन्तर ! मध्यम श्रेणी का साहित्य व्यक्तिगत आत्मलिप्ति का साहित्य है, वह स्वान्तः सुखाय की बात कहकर झूठा सन्तोष करता है। उसकी परिस्थिति उसे सुख की इच्छा और कल्पना का संस्कार और अवसर तो देती है परन्तु साधन नहीं देती इसलिये वह काल्पनिक आत्मलिप्ति में सुख पाता है। जो चाहता है वह पा नहीं सकता तो न पाने को ही सुख समझना चाहता है। वह शृंगाररस का सुख वियोग के रूप में भोगना चाहता है। यह उसी भौतिक, सामाजिक परिस्थितियों में परास्त मनोवृत्ति और कल्पना है। औद्योगिक समाज के श्रेणी संघर्ष का परिणाम है कि मध्यम श्रेणी साधनहीन वर्ग में मिलती जा रही है परन्तु उसका परम्परागत सफेद पोशी का अहंकार शेष है इसलिये वह ऐसे सुख की कल्पना करती है जिसे साधनों का अभाव न बिगाड़े। ये श्रेणी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बात तो करती है परन्तु अवसर के बिना सदा अभाव से पीड़ित रह कर। स्वतंत्रता का अर्थ क्या है ?

"कलाकार और साहित्यिक व्यक्तिवाद की शरण तभी लेता है जब वह सामूहिक जीवन में संघर्ष और असुविधा देखकर मैदान से भागना चाहता है। वह अपनी और अपनी श्रेणी की महत्वाकांक्षा के पूर्ण होने की सम्भावना नहीं देखता तो अभाव को, वियोग को, आत्मरति को ही सुख बताने की दार्शनिकता का दम्भ करता है।

दूसरी ओर मज़दूर श्रेणी अपनी संघ-शक्ति के साधन से उत्कर्ष और संघर्ष की कल्पना करती है क्योंकि उसका भविष्य उज्ज्वल है, क्योंकि जीवन के साधनों को उत्पन्न करने की शक्ति अपने में अनुभव करती है।"

सर्वोदयीजी ने अपनी आतुर और चिन्तित दृष्टि से सब लोगों की

ओर देखकर बात बदल दी—"साहित्य में गाली देना बुरी तुम्हारी जात कहना घृणा और हिंसा का प्रचार करने की प्रवृत्ति क्या समाज के लिये कल्याणकारी है ?"

कामरेड ने छाती ठोक कर उत्तर दिया, "अवश्य ! हितकर और अहित कर को पहचानना आवश्यक है। जो अहितकर है उसे समाप्त करने के लिये उससे घृणा करना ही चाहिये। जो समाज के लिये हानिकारक है, जो वास्तव मे समाज की हिंसा है, उससे प्रेम करने का दम्भ हम नही कर सकते। बुरी चीज को समाप्त करने के लिये उसके प्रति घृणा ही हमारी शक्ति को जागरित करती है, हमे नैतिक बल देती है। आत्मरक्षा और शत्रु का नाश एक ही उद्देश्य के लिये दो क्रियाये है। एक चीज को बुरा भी कहना और उससे प्रेम भी करते जाना केवल दम्भ है। इसका अर्थ है बुरे को फुसला कर उससे समझौता करने की इच्छा।"

"यह ठीक वैसा ही है" प्रगतिवादी ने जोड़ा, "जैसे उर्दू शायरी मे माशूक को जालिम पुकारा जाता है।"

कहकहा समाप्त होने पर जिज्ञासु ने फिर प्रश्न कर दिया, "तो आप आधुनिक प्रगतिशील साहित्य का क्या ध्येय और आदर्श समझते है ?"

"प्रगतिशील श्रेणी की भावना की अभिव्यक्ति प्रगतिशील साहित्य है।" प्रगतिवादी ने उत्तर दिया, "बीते हुये समय और बीती हुई परिस्थितियों मे जो व्यवस्था उपयोगी थी उसका समर्थन करने वाली सत्य और न्याय की धारणाओं को, जो अब स्वयं परस्पर-विरोधी हो रही है, बदल कर आधुनिक परिस्थितियों में समाज के लिये विकास का अवसर देने वाली सत्य और न्याय की धारणाओ का समर्थन करना प्रगतिशील साहित्य का काम है। प्रगतिशील साहित्य का काम समाज के विकास के मार्ग में आने वाली अन्ध-विश्वास और रूढ़िवादी अडचनों को दूर करना है। प्रगतिशील साहित्य का ध्येय है, समाज को शोषण के बन्धन से मुक्त करने के कार्यक्रम मे, प्रगतिशील क्रान्तिकारी

सर्वहारा श्रेणी का सबल साधन बनना। प्रगतिशील साहित्य का मार्ग काल्पनिक सुखो की अनुभूति के भ्रमजाल को दूर करके मानवता की भौतिक और मानसिक समृद्धि के रचनात्मक कार्य के लिए प्रेरणा देना है।"

"हम सीधी बात क्यो न कहे।" इतिहासज्ञ बोले, "समाज के नेतृत्व और शासन का अधिकार भूमिपति सामन्तो के हाथ से पूँजीपतियो के हाथ मे गया और अब श्रम करने वालो की बारी है। सामन्त श्रेणी के साहित्यिको ने अपनी श्रेणी के हित के अनुकूल व्यवस्था को मान्यता देने का और उसकी नैतिकता के प्रचार का काम किया। राजा को ईश्वर मानने की, स्वामी को प्रभु मानने की शिक्षा दी। इस व्यवस्था का उल्लंघन करने से परलोक मे दण्ड का भय दिखाया।

"पूँजीपति श्रेणी के अभ्युदय का काल आने पर पूँजीपति समाज के साहित्यिको ने मनुष्यो के समान अधिकारो का, व्यापारिक स्वतंत्रता का, सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार का प्रजातंत्र का और राष्ट्रीयता का प्रचार किया। पैदावार के साधनो मे पूँजी को सर्वोपरि स्थान दिया और पूँजी को ही न्याय और नैतिकता का आधार मानने का प्रचार किया। आज पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था समाज के विकास को आगे ले चलने में और समाज को जीवन-रक्षा और विकास का अवसर दे सकने मे असमर्थ हो गयी है। इस श्रेणी का स्वार्थ समाज के लिये घातक हो रहा है, इसलिये समाज का नेतृत्व पूँजीवादी व्यवस्था के बन्धनो को तोड़ने वाली श्रेणी—सर्वहारा मजदूर श्रेणी के हाथों में जा रहा है।

"इस श्रेणी के साहित्यिक, प्रगतिवादी साहित्यिक का काम है कि संघर्ष मे अपनी श्रेणी को सबल बनाने वाली और समाज की आधुनिक परिस्थितियो मे विकासशील नैतिकता का प्रचार करे। समाज के लिये घातक पूँजीवादी बन्धनो की अनैतिकता और अन्तर्विरोधों को प्रकट करे और देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था अपने हाथ में लेने के संघर्ष मे प्रगतिशील मजदूर श्रेणी को सहायता दे।"

"यह तो संवर्ष की बात हुई, साहित्य और कला की बात नही हुई !" इतिहासज्ञ की बात उडा देने के भाव से शुद्धसाहित्यिक हाथ उठाकर बोले ।

"यदि जीवन सवर्ष है और कला जीवन की भावना की अभिव्यक्ति है तो कला संघर्ष का मार्ग दिखाये बिना नही रह सकती । केवल निरर्थक कला ही सघर्ष द्वारा विकास की भावना और प्रयत्न से शून्य हो सकती है ।" इतिहासज्ञ ने आग्रह किया ।

कामरेड ने तीखे स्वर मे प्रश्न किया, "क्या कोई कला अभिव्यक्ति-शून्य हो सकती है ? अभिव्यक्ति को आप प्रचार नही तो क्या कहेंगे ?"

शुद्धसाहित्यिक ने दीवार पर लटके, सध्याकाश के नीचे सिन्दूरी होते हिमाच्छादित पर्वत शृंगों के चित्र की ओर सकेत कर पूछा, "आप इस चित्र को कला मानते है या नही ? मानते है तो इसे किस बात का प्रचार कहेगे ?"

कामरेड उस सुन्दर चित्र को कलाहीन कहने का साहस न कर सके और चुप देखते रह गये परन्तु मार्क्सवादी ने तुरन्त उत्तर दिया, "यह चित्रकला की सुन्दर कृति है और यह हिमाच्छादित पर्वत-शृगो के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है, उस सौन्दर्य को आप तक पहुँचाने का प्रयत्न है ।"

शुद्धसाहित्यिक उछल पड़े, "बस यही तो, यही तो ! यह सौन्दर्य के लिये सौन्दर्य; आपको मानना पड़ेगा !" उन्होने मार्क्सवादी की ओर तर्जनी उठाकर पराजय स्वीकार करने की चुनौती दी ।

मार्क्सवादी ने पराजय स्वीकार करने से सिर हिलाकर इनकार में उत्तर दिया, "यह सौन्दर्य भी सौन्दर्य के लिये नही, मनुष्य के ही लिये है ।"

शुद्धसाहित्यिक ने तीखे स्वर में फिर टोक दिया—"परन्तु इस सौन्दर्य में आपका श्रेणी-संघर्ष कहाँ है ? इस रचना में श्रेणी-भावना और श्रेणी-संघर्ष कहाँ है ?"

मार्क्सवादी ने भी ऊँचे स्वर में उत्तर दिया, "क्या कला केवल इन

चित्रो, नदियो और पर्वतो के वर्णनो और चित्रण तक ही सीमित है ? यदि कला की सीमा केवल प्रकृति की शोभा को निहार कर मुग्ध होना ही है तो आपकी बात सही हो सकती है परन्तु प्रकृति को भी भावना शून्य होकर नही देखा जा सकता। कालिदास और सुमित्रानन्दन पंत नदी की लहरो की गति देख कर, नारी की जाँघ पर से वस्त्र सरकाने की कल्पना कर सतुष्ट होते है और सोवियत तुर्कमानिस्तान का कलाकार 'बर्दी' नदी की धारा को पुकार कर, अपने रेगिस्तान के बजर प्रदेशो को स्तन-पान कराकर, उर्वरा बनाने का अनुरोध करता है। कहिये, प्रकृति की शोभा देखने मे मनुष्य के दृष्टिकोण का महत्व रहता है या नही ?''

बात बहुत बढ चुकी थी इसलिये वैज्ञानिक ने उसे समाप्त करने के भाव से समाधान किया, ''कला का प्रयोजन मनुष्य जीवन मे सामर्थ्य की वृद्धि और माधुर्य की सृष्टि करना है। जीवन मे माधुर्य की अनुभूति कर पाने के लिये जीवित रह सकना आवश्यक है। मजदूर श्रेणी की धारणाओ और भावनाओ का प्रतिनिधित्व करने वाला प्रगतिशील साहित्य सर्व-साधारण के लिये जीवन के अवसर की सम्भावना की माग करता है। वह समाज के किसी भी व्यक्ति को, वह चाहे पूँजीपति हो या मजदूर, जीवन के साधनो से वंचित नही रहने देना चाहता। वह इस उद्देश्य के लिये प्रतिज्ञाबद्ध है। इस उद्देश्य से विरोध उसी वर्ग या व्यक्ति को हो सकता है जो सर्व-साधारण के साधनहीन और अवसरहीन बने रहने में ही अपनी सत्ता की रक्षा समझता है।''

२

पूंजीवादी व्यवस्था में
मुनाफ़ा कमाने की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता

एक दिन अवसरवश शुद्धसाहित्यिक जी एक रिक्शे पर सवार हो कर चक्कर क्लब पहुँचे ।

सड़क पर से शुद्धसाहित्यिक जी का झुझलाहट भरा स्वर सुनाई दिया, "तुम्हे बात करने की तमीज नही है ?····ऐसे बदतमीजी से बोलोगे तो एक झापड़ देगे·····!"

अनुमान हुआ कि रिक्शा वाला शुद्धसाहित्यिक जी को परेशान कर रहा है । मौजी और कामरेड लपक कर उनकी सहायता के लिये बाहर पहुँचे । मामला रफा-दफा कर इन तीनों के भीतर लौट आने पर भी शुद्धसाहित्यिक जी का रोष शान्त न हुआ था । वे कहते जा रहे थे— कैसे बदतमीज होते है यह रिक्शावाले ! देखिये तो, भले आदमी की इज्जत पर हाथ डालने के लिये तैयार हो जाते है ·····।

रिक्शा चलाने वाला अदना आदमी किसी सफेदपोश का अपमान कर जाये, यह बात राष्ट्रीयजी को बहुत बुरी लगी, "बदतमीज़ी कर रहा था तो आपने एक थप्पड़ क्यो नही दिया·····को ?" राष्ट्रीयजी अपनी आस्तीन चढाकर क्रोध को व्यवहारिक रूप दे सकने के लिये गरज उठे ।

एक भले आदमी का अपमान होने की बात सभी को बुरी लगी । इतिहासज्ञ ने माथे पर त्योरी डाल कर प्रश्न किया, "आखिर बात थी क्या ? क्या बदतमीजी की उसने ?"

शुद्धसाहित्यिक जी का क्रोध सहानुभूति और समर्थन पाने के कारण और भभक उठा। ऊँचे स्वर मे बोले—''अजी बदतमीजी वह क्या करता ? कहने लगा, छः आने तुमने कैसरबाग के कहे थे।''''हमने कहा—तू-तड़ाक का क्या मतलब ? तुम्हे जो माँगना है, अदब से माँगो।''

''अरे,'' उपेक्षा प्रकट करने के लिये कामरेड बोल उठे, ''बस इतनी ही बात थी ? हम तो समझे थे कि रिक्शावाला शुद्ध साहित्यिक-जी की शारीरिक कोमलता का अनुचित लाभ उठाने की इच्छा से इनकी सफेद पोशी पर दाग लगा देने की धमकी देकर, छः आने की जगह दस आने लेने की कोशिश कर रहा था।''

शुद्धसाहित्यिक जी और भी बिगड उठे, ''भाड़ मे गये तुम्हारे छः आने और दस आने ! तुम्हे हर बात मे आर्थिक दृष्टिकोण ही दिखायी देता है। चार आना पैसा बडा है या आदमी की इज्जत ?''

कामरेड झेपने के बजाय हँस दिये, ''साहित्यिक जी, आप भी तो रिक्शा वाले से 'तू-तड़ाक, कर रहे थे, उसे झाँपड मारने की धमकी दे रहे थे !''

राष्ट्रीयजी उत्तेजित होकर बीच मे चिल्ला उठे, ''यानी, एक भला आदमी और कुली-कबाड एक हो गये ! आग लगे इस कामरेडी और समाजवाद में। समाज मे किसी की इज्जत और आदर कुछ नही।''

कामरेड शायद साहित्यिक जी को खिझाने पर तुले हुए थे। फिर बोल उठे, ''आदर तो शुद्धसाहित्यिक जी को रिक्शावाले का करना चाहिए था। वह इन्हें अपनी कमर पर घसीट कर इतनी दूर लाया। इन्हें चाहिये था, उसे धन्यवाद देते ! उल्टा उम्मीद कर रहे है कि वह दामो के लिये इनके सामने गिड़गिड़ाता और इन्हें सलाम करके जाता। साहित्यिक जी किस नाते आदर के अधिकारी है ? क्या इसलिये कि चल नहीं सकते ? अपाहिज होने का क्या आदर ?''

"अपाहिज हो तुम !" शुद्धसाहित्यिक जी बहुत क्रुद्ध हो गये, "जो पचहत्तर रुपल्ली माहवार पर अपने आपको बेचते हो। हम तुम्हारे जैसे दस को नौकर रख सकते है।"

कामरेड ने कहकहा लगा कर अधिक कडवी बात कहने के लिये मुँह खोला था कि मार्क्सवादी ने इन्हे रोकने के लिये उनका हाथ थाम लिया और बोले, "साहित्यिक जी सुनिये, अभी आप बिगड़ रहे थे कि कामरेड को हर बात में आर्थिक दृष्टिकोण ही दिखाई देता है। अब आप स्वयं ही आर्थिक आधार पर अपने अधिक समर्थ होने और आदर के अधिकारी होने का एलान कर रहे है। इसी अधिकार से आप रिक्शेवाले से भी सलाम की आशा करते है। यह आदर मनुष्य का या उसकी उत्पादक शक्ति का नहीं, समाज की व्यवस्था पर शासन करने वाली पूँजी का ही है ....।"

सर्वोदयीजी अपना हाथ, भगवान बुद्ध की तरह शान्त-मुद्रा में ऊपर उठाकर टोक बैठे, "धन और माया का आदर आप लोगों की भौतिकतावादी पश्चिम की सभ्यता और संस्कृति का परिणाम है। हमारी संस्कृति में तो सदा त्याग का ही आदर होता आया है। हमारे देश में तो बनों में तपस्या करने वाले ऋषियो ही का आदर था। ऋषि लोग चक्रवर्ती महाराजाओं के माथे पर अपने पाँव के अँगूठे से तिलक कर देते थे और राजा लोग अपने आपको धन्य समझते थे। हमारे देश में 'बापू' से अधिक आदर किसका...."

वैज्ञानिक ने तिलमिला कर टोक दिया, "जो व्यक्ति दूसरे के माथे पर अपना पाँव लगाने की धृष्टता करता है, उसे आप त्यागी कहेंगे ? जो व्यक्ति अपने पाँव को दूसरे व्यक्ति के माथे से अधिक पवित्र समझता है, उससे बढ़ कर अहंकारी और दम्भी कौन होगा ? इस अहंकार और दम्भ को आप त्याग कह सकते है ?"

वैज्ञानिक सास लेने के लिये रुके ही थे कि इतिहासज्ञ बोल उठे :

"प्राचीन काल मे ऋषियो का आदर इसलिये नही होता था कि

वे भूखे मरते थे या उनके पास आवश्यकताये पूरी करने के साधन नही थे। जिन ऋषियों को राजा लोग सोने से सीग मढ़ी सौ-सौ गौएँ और पालकी ढोने वाले दास और दासियाँ भेंट मे देते थे, उनकी गरीबी और निर्धनता की बात करना मिथ्या ढोग है। ऋषियो का आदर इसलिये था कि वे न हल जोतते थे और न सिर पर बोझ उठाते थे। जीवन के लिए आवश्यक वस्तुयें प्राप्त करने के लिए उन्हे कोई श्रम नही करना पडता था। उनकी आवश्यकताये अपूर्ण भी नही रहती थी, क्योकि वे उस काल की शासन व्यवस्था में साझीदार थे।"

"क्या कहे चले जा रहे है आप !" राष्ट्रीय जी खिन्न स्वर मे बोल उठे, "कणाद जैसे ऋषि जो खेतों मे गिरा हुआ अन्न बटोर कर निर्वाह करते थे और श्वेतकेतु बेचारे तो भूख से व्याकुल होकर आक के पत्ते खाकर अंधे हो गये थे। आप बता रहे है कि ऋषि लोग पालकियो पर सवारी करते थे।"

इतिहासज्ञ अधिक तीखे स्वर में बोले, "कणाद जी महाराज यदि खेती के लिए मेहनत न कर दूसरों के खेतो में गिरे अन्न के दाने चुगते फिरते थे तो यह उनकी अपनी सनक रही होगी। लेकिन आप जानते है कि ऋषियो की आवश्यकताये पूरी करना, उनकी सेवा करना राजाओं और सेठों का कर्त्तव्य समझा जाता था। यदि कणाद जी महाराज अपनी सनक से दुख उठाते थे तो किसी दूसरे का इससे क्या भला हुआ ?"

सर्वोदयीजी के हाथ और नेत्र उत्तेजना से विस्मय की मुद्रा में फैल गये और उन्होने ऊँचे स्वर मे प्रश्न किया, "किसी का क्या भला हुआ ? अरे, आप क्या कह रहे है ? हमारे ऋषि लोग जो अमर ज्ञान इस देश को उत्तराधिकार मे दे गये है, उसे आप कुछ समझते ही नही ? अरे वही तो मनुष्य के जीवन का वास्तविक तत्व है, वही तो मनुष्य-जीवन में शान्ति का मूल और शाश्वत सूत्र है।"

वैज्ञानिक हाथ हिलाकर ऊँचे स्वर मे बोले, "बहुत अच्छा, यदि

ऋषि लोग आप को मनुष्य-जीवन की वास्तविक सफलता का नुसखा दे गये है तो देश की इस कठिनाई के समय, भूखी और नंगी, हाय-हाय करती जनता के दुख का उपाय आप ऋषियो के बताये नुसखे से क्यो नही करते ? इस ब्रह्मज्ञान द्वारा आज तक कितने आदमियो ने कष्टो से मुक्ति पायी है ? ऋषियो से पाये ब्रह्म-ज्ञान द्वारा मनुष्य-समाज की कौन-सी आवश्यकता पूरी हुई है ? भौतिक ज्ञान ने मनुष्य-समाज की उन्नति में जो सहायता दी है, मनुष्य को जैसे प्रकृति पर विजय पाने योग्य बनाया है; वह आपके सामने है । ब्रह्म-ज्ञान ने मनुष्य-समाज के लिये या इस ब्रह्म-ज्ञानी देश के लिये क्या किया है....?''

सर्वोदयीजी इन्हे फिर टोक बैठे, ''प्रकृति पर विजय ? यह आपके भौतिकवाद का झूठा अहंकार है ? क्या आपने मृत्यु को जीत लिया है ? क्या आप अपनी इच्छा से ऋतुओ को बदल सकते है ? बिना पृथ्वी के अन्न उत्पन्न कर सकते है ? मृत्यु को जीता था हमारे ऋषियो ने, जिन्हे मृत्यु का भय ही नही रहा था ?''

मार्क्सवादी ने उनसे भी तीखे और अधिकार पूर्ण स्वर मे उत्तर दिया, ''आपके ऋषियों ने मृत्यु को जीत लिया होता तो आज आपको उनकी झूठी वकालत करने की आवश्यकता न पड़ती । वे स्वयं ही यहाँ बैठे होते । एक दिन मृत्यु आयेगी, इस भय से समाज के प्रति अपना कर्त्तव्य छोड़कर जंगल में जा बैठना मृत्यु पर विजय नही, मृत्यु का उग्र भय है; सदा मृत्यु की ही बात सोचते रहना है । भौतिक ज्ञान ने अवश्य मृत्यु को पराजित किया है। जिन अनेक रोगो को आप केवल ईश्वर की इच्छा और असाध्य समझते थे, आज वे कितनी सरलता से वश में आ जाते है । साधन होने पर निमोनिया और टाइफाइड आज चुटकी बजाते ठीक होते है, मलेरिया और हैज़े को आज आप फैलने से रोक सकते है, नदियों की दिशा बदल सकते है, हवा मे उड़ सकते है, महामारी और बाढ़ का उपाय कर सकते है, बंजर मरुभूमि को उपजाऊ बना सकते है, योरुप मे मौजूद पशुओं को यहाँ लाये बिना उनकी नस्लें

यहाँ पैदा कर सकते हैं, अपने मकानों मे अपनी इच्छानुसार गरमी-सरदी पैदा कर सकते हैं। प्रकृति पर विजय पाने का अर्थ प्रकृति को वदल देना नहीं; इसका अर्थ है, मनुष्य को कुचल देने वाली प्रकृति को मनुष्य के लिये उपयोगी और मनुष्य की सेविका बना देना·····"

सर्वोदयीजी फिर टोक बैठे, "परन्तु क्या इससे समाज में शाति हो गयी ?"

कामरेड ने विगड़ कर उत्तर दिया, "आपके ऋषियो की शांति का तो आदर्श था, 'अजगर करे न चाकरी कागा करे न काम, दास मलूका कह गये सब के दाता राम।' आपके ऋषि और राजा, प्राचीन शासक और शोषक समाज के मुखिया थे। वे समाज के लिये पैदावार के कोई श्रम नही करते थे। श्रम से पैदावार करने वालो, लुहार, चमार, बढई, धोबी, माली, तेली, जुलाहे और कृषक का न कोई आदर था न अधिकार। वे सब अन्त्यज और शूद्र कहे जाते थे और उनका धर्म था केवल सेवा करना, पदार्थों को पैदा करके मालिको को सौप देना। द्विज शोषक श्रेणी उत्पत्ति के साधनो और भूमि की मालिक थी। यह श्रेणी शस्त्रों की शक्ति से भूमि पर अपना अधिकार रखती थी। यह श्रेणी श्रम करने वालों को विश्वास के बंधन और शास्त्र के दबाव से अपने आधीन रख कर, उनकी मेहनत का फल खाकर ब्रह्म-ज्ञान का सुख भोगती थी। यही था ब्रह्म-ज्ञान का मूल मन्त्र। द्विज लोग इस ब्रह्म-ज्ञान का अधिकार अपनी श्रेणी के अतिरिक्त किसी दूसरे को देने के लिये तैयार न थे। इस व्यवस्था में श्रम जबरदस्ती कराया जाता था और श्रम का अपमान था। मान सम्पत्ति और भोग के अधिकार का था। वही मंत्र, (ईश्वर की प्रेरणा के नाम से मेहनत करने वाले वर्ग पर शासन रखने का मंत्र) आप फिर लागू करना चाहते है परन्तु अब श्रम करने वाला वर्ग सचेत हो रहा है। वह अपनी नैतिकता और न्याय की स्थापना करना चाहता है। समाज का पालन सम्पत्ति नही, श्रम करता है। श्रम ही सम्पत्ति को भी उत्पन्न करता

है। श्रमिक वर्ग समाज से सम्पत्ति का शासन हटा कर श्रम का शासन और श्रम की मान्यता स्थापित करना चाहता है।"

सर्वोदयीजी दुहाई देने के भाव में दोनो हाथ फैलाकर और सब लोगों की ओर समर्थन की प्रार्थना से देखकर बोले, "सम्पत्ति के लिये लोभ और संघर्ष फैलाकर सम्पत्ति की दासता का प्रचार तो आप भौतिकवादी लोग ही करते है। बापू ने तो सम्पत्ति को ठोकर मारने का ही आदर्श पेश किया था। आपका समाजवाद 'आर्थिक संघर्ष' और 'श्रेणी सघर्ष' को ही सब कुछ समझता है। कौन बढ़ाता है सम्पत्ति की दासता को ?"

"सम्पत्ति को ठोकर मारने का प्रचार केवल प्रवंचना है।" मार्क्सवादी ने गम्भीर और ऊँचे स्वर में विरोध किया, "सम्पत्ति का अर्थ है, जीवन-रक्षा के लिए आवश्यक पदार्थ, आवश्यक पदार्थों को प्राप्त करने के साधन और अवसर। सम्पत्ति का रूप चाहे जो हो, उसके बिना व्यक्ति और समाज किसी का भी जीवन सम्भव नही है। जीवन-रक्षा के लिये आवश्यक पदार्थो को आप चाहे स्वयं पैदा करे, चाहे माँग ले या डाका मार कर लाये या कोई उन्हें आपके चरणों में भेट कर दे, जीवन उन्ही से चलता है। जीवन-रक्षा के लिये आवश्यक साधनों को पाने की चेष्टा व्यक्ति और समाज के जीवन की स्वाभाविक और आवश्यक गति है। जीवन-रक्षा के लिये आवश्यक पदार्थों को पाने में जितनी कठिनाई होगी, उतना ही विकट संघर्ष उनके लिये होगा।

"इस संघर्ष का कारण पूँजीवाद द्वारा उत्पन्न हो गयी विषमता है। समाज की वर्तमान अवस्था में आर्थिक संघर्ष को रोकने के प्रयत्न का प्रयोजन है कि समाज में सम्पत्ति पर अधिकार की, और समाज मे होने वाली पैदावार के बंटवारे की जैसी अवस्था है, उसमे परिवर्तन न हो। आपको मानना ही पड़ेगा कि आज समाज में आदर और अधिकार का अवसर सबके लिये समान नहीं है। जिसके हाथ में सम्पत्ति के स्वामित्व का जितना अवसर और अधिकार है, उतनी ही उसकी

सामर्थ्य और शक्ति है। समाज मे समता और समान अवसर, सहृदयता और हृदय-परिवर्तन के उपदेश से नही, जीवन के साधनों पर सब लोगो का अधिकार, समान रूप से होने से ही हो सकता है। समाज में विषमता और असमान अवसर का कारण मनुष्यो के दुर्गुण नही, समाज की परिस्थितियाँ ही है। परिस्थितियो और व्यवस्था के बदलने से ही मनुष्यो के सद्गुण पनप सकेंगे। सामाजिक न्याय के लिये आवश्यक है कि जिन लोगो ने समाज द्वारा उत्पन्न की गयी सम्पत्ति में से दूसरो का भाग छीन कर अपने अधिकार में कर लिया है, उनके अन्याय को समाज की सामूहिक शक्ति द्वारा दूर करके, समाज के पैदावार के साधनो पर सम्पूर्ण समाज का या पैदावार के लिये श्रम करने वालो का समान अधिकार स्वीकार किया जाये·····"

सर्वोदयीजी ने व्याकुलता से चेतावनी में उँगली खड़ी कर सावधान किया, "यह आप क्या कह रहे है? न्याय और समता के नाम पर आप सामूहिक डाकेजनी और हिंसा का प्रचार कर रहे है! सम्पत्ति के स्वामियो और संरक्षकों से सम्पत्ति को सामूहिक शक्ति से छीनने का अर्थ डाकेजनी और हिंसा नहीं तो क्या है?"

"चोर से चोरी का माल बरामद कर लेना क्या चोरी और हिंसा है?" कामरेड ने मुक्का उठा कर फर्श से बालिश्त भर उचकते हुए पूछा।

प्रायः सभी लोगों के चेहरो पर विस्मय का भाव आ गया। शुद्ध साहित्यिक जी इस विवाद को अपनी ही आलोचना समझ कर अब तक चुप बैठे थे परन्तु अब पूछ बैठे, "चोर से चोरी का माल बरामद करने का मतलब?"

कामरेड से पहले बोल उठे इतिहासज्ञ, "सुनिये, बड़े भारी फ्रेंच विद्वान 'प्राधों' का कहना है—'सम्पूर्ण सम्पत्ति चोरी है।' समाज में शान्ति चाहने वाले हमारे पूर्वज ऋषियों ने भी सम्पत्ति संचय करना पाप बताया था। मतलब यही था कि सम्पत्ति को समाज सामूहिक रूप से उत्पन्न करता है, उसे व्यक्तिगत रूप से दबा लेना चोरी है·····"

उनके मुंह की बात लेकर वैज्ञानिक ने कहा, "समाज में पैदावार तो श्रम से ही होती है। यदि सब लोगों को श्रम करने का समान अवसर हो और सब लोग अपने श्रम का फल खर्च कर सकें, तो किसी के पास दूसरो की अपेक्षा लाखों गुणा अधिक धन-सम्पत्ति जमा हो जाने का कोई कारण नहीं हो सकता। यदि किसी के पास दूसरों की अपेक्षा हजार-लाख गुना धन है, कोई हजारों आदमियो की श्रम-शक्ति खरीद सकता है, उन्हे अपने काम के लिये नौकर रख सकता है, तो यह सम्पत्ति उसके पास निश्चय ही, दूसरों का श्रम हथिया लेने के कारण ही जमा हो सकी है।"

वैज्ञानिक की बात अस्वीकार करने के लिये भद्रपुरुष सिर हिलाकर बोले, "पैदावार या सम्पत्ति को श्रम ही नही पैदा करता। किसी मिल मे दस हजार मजदूर काम कर सके, मिल में अपनी मेहनत लगा सके, इसके लिये पहले मिल का या मिल बनाने लायक सम्पत्ति का होना जरूरी है। आप पूँजी के महत्व को कम नही कर सकते।"

इतिहासज्ञ ने अस्वीकृति की मुद्रा से कहा, "सम्पत्ति का महत्व तो है परन्तु सम्पत्ति है क्या? सम्पत्ति केवल श्रम का पदार्थों के रूप में जमा किया गया रूप या फल ही तो है। कपास पैदा करने मे और कपड़ा बुनने में जो श्रम होता है उसी के कारण कपड़े का मूल्य है, और कपड़ा सम्पत्ति बन जाता है। सम्पत्ति को सुविधा से जमा करने के लिये आप रुपयो मे बदल लेते है कि अवसर पर इस रुपये से दूसरे आदमी के श्रम से पैदा हुआ पदार्थ या उसकी श्रम-शक्ति खरीद सकें।

"एक जमाने में मिलें और कारखाने नही थे। आदमी की श्रम करने की शक्ति उस समय भी थी। उसी श्रम-शक्ति का फल संचय होते-होते कारखाने और मिले बन सकी है या पैदावार के साधनों के रूप में सम्पत्ति जमा हो सकी है। आज सम्पत्ति स्वयं पैदावार का बडा भारी साधन बन गयी है और सम्पत्ति के मालिक इस शक्ति से, समाज की पैदावार की व्यवस्था पर शासन कर रहे हैं। उन्होंने सम्पत्ति के रूप

में पैदावार के सम्पूर्ण साधनो पर अधिकार कर लिया है। एक समय शोषक शासक पैदावार के साधनो (मुख्यत. भूमि या जंगलो) को शस्त्र-शक्ति से अपने वश में रख कर, मेहनत करने वाली श्रेणी के श्रम का फल भोगते थे। आज आर्थिक और औद्योगिक विकास की अवस्था मे, सम्पत्ति की मालिक श्रेणी पैदावार के नये उत्पन्न हो गये साधनो, यंत्र आदि पर अधिकार करके समाज की आर्थिक व्यवस्था को अपने वश मे किये है। कोई भी साधनहीन व्यक्ति, जो अपने श्रम का एक भाग मुनाफे के रूप मे पूजीपति को न दे, पैदावार करने का अवसर नहीं पा सकता। पूजीवादी व्यवस्था मे शासन और सरकार का अधिकार पूजीपति श्रेणी के हाथ मे होने के कारण, पूजीपति श्रेणी सीना-जोरी से अपना मुनाफा कहकर, श्रमिक श्रेणी के श्रम के फल में से चोरी करती है।

"समाज द्वारा की गयी सामूहिक पैदावार मुनाफे के नाम से पूँजी-पति श्रेणी के हाथ में जमा होते जाने का परिणाम यह है कि पूँजीपति श्रेणी पैदावार के साधनों और आर्थिक व्यवस्था पर अपना शासन बढ़ाये जा रही है। समाज के श्रम की यह उनकी चोरी मुनाफे के रूप में बढ़ती ही जा रही है और श्रम करने वाले लोग श्रेणी रूप से दिन-दिन पराधीन और निस्सहाय होते जा रहे है।

वैज्ञानिक की इस लम्बी वक्तृता के उत्तर में सर्वोदयीजी चेहरे पर करुणा और यातना का निरीह भाव लाकर बोले, "मुनाफे को आप चोरी कैसे कह सकते है ? मालिक के मुनाफे को चोरी बताना आपकी ईर्ष्या और हिंसा-वृत्ति का परिचायक है। आपको पूँजीपति श्रेणी से द्रोह है इसलिये आप उनके श्रम के फल को चोरी कहकर अपना द्वेष प्रकट करते है। जैसे और धन्धो के लोग वकील, डाक्टर और कलाकार अपने विशेष श्रम का फल पाते है, उसी प्रकार पूँजीपति भी अपने श्रम का फल पाता है। आप यह नही देखते कि पूँजीपति लोग समाज के लिये आवश्यक पदार्थ पैदा करने के लिए अपनी पूँजी जोखिम में लगाते

है। यह जोखिम सहने का फल क्या उसे कुछ नही मिलना चाहिये ? बापू ने किसान-मजदूर जनता के प्रति दया और सहानुभूति का उपदेश दिया है परन्तु मालिक के अधिकारो की रक्षा को भी न्याय बताया है। अन्याय किसी के भी प्रति हो, अन्याय ही है।"

इतिहासज्ञ ने सर्वोदयीजी की बात पर खिन्नता प्रकट करने के लिये जोर से सिर हिलाकर विरोध किया, "मालिक के अधिकार की बात एक ही रही। अभी हाल तक जमीदार-मालिक को बेगार लेने का अधिकार था। कुछ समय पहिले तक ठाकुर लोग अपनी प्रजा में कोई विवाह होने पर नववधू पर पहली रात अपना अधिकार समझते थे। दक्षिण के धर्मपरायण लोगों में नववधू पर पहली रात नम्बूदरी ब्राह्मण का अधिकार होता था। मालिक गुलामो के प्राणों पर अपना अधिकार समझते थे। औरंगजेब हिन्दुओ से जज़िया[1] लेना अपना अधिकार समझता था। इन सब अधिकारो की रक्षा कीजियेगा ? जिसके हाथ जितनी शक्ति, उसके उतने अधिकार। जिसके हाथ शक्ति उसी के साथ भगवान। जिस समय समाज मे पैदावार के साधनो पर शस्त्र से नियंत्रण रखा जा सकता था, सौ या हजार आदमी लेकर हथियारो के जोर से भूमि छीन लेने वाले लोगो के ही सब अधिकार थे। निज़ाम के पूर्वज हैदरअली, टीपू सुल्तान और महाराजा रणजीतसिंह इसी अधिकार स महाराज बन गये।

"महाराज रणजीतसिंह ने मुसलमान शासक से लाहौर का राज छीनने के साथ ही उससे कोहनूर हीरा भी छीन लिया था। अंग्रेज राजदूत ने जब रणजीतसिंह से हीरे का दाम पूछा तो रणजीतसिंह ने उत्तर दिया—इस हीरे का दाम है 'दस जूते'। जो दस जूते मार सकता है, इस हीरे को छीन सकता है। आज यह नैतिकता मान्य न होगी। आज कहा जायगा, जो पॉच करोड़ रुपया दे सकता है, हीरे को ले

---

१. हिन्दू बने रहने का कर।

सकता है। यह है शस्त्रो की अपेक्षा पूजी की मान्यता परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अब भी शस्त्रशक्ति, एटम बम की ही मान्यता है। मनुष्य अभी तक व्यक्तिगत रूप से, समाजवादी देशों मे ही सामाजिक रूप से—सभ्य हो सका है; परन्तु अब अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता का भी विकास हो रहा है।

"उस समय ऐसे लोगों को राजा-महाराजा कहकर सम्पूर्ण प्रजा और साधु-सन्त उनके सामने सिर झुकाते थे। उन लुटेरे डाकुओ को ही भगवान का प्रतिनिधि कह दिया जाता था। राजा या ठाकुर अपनी प्रजा की श्रम की कमाई का जितना भाग चाहता था, ले लेता था। मालिक लोग अपने दासों को कोडे मार कर, मौत का भय दिखा कर जो सेवा चाहते थे, करा लेते थे। समाज में पैदावार के साधनो का विकास हो जाने पर, पैदावार की व्यवस्था में पूंजी की प्रधानता हो जाने पर, पैदावार के साधनो को पूंजी से वश मे रखने वाली श्रेणी, जनता के श्रम को मुनाफे के रूप मे छीन लेती है। साधनहीनो को आर्थिक व्यवस्था से मजबूर रखकर उनकी पीठ पर चढ़ा जा सकता है, उनसे अपना पाखाना उठवाया जा सकता है, उनकी बहू-बेटियों को अपने विनोद के लिये कोठो पर बैठाया जा सकता है। यदि वे ऐसा न करें तो भूखो मरे।

"आपको अहंकार है कि आप मर जायेंगे पर ऐसा काम नही करेंगे परन्तु साधनहीनो को भूखा रखकर आप उनसे सब कुछ करवा सकते है, करवाते ही है। एक दो आदमी अपने अहकार या अपनी आन पर मर कर दिखा सकते है परन्तु पीढ़ी-दर-पीढी कोई जाति अड़ नही सकती। उसे अपना जीवन परिस्थितियो के अनुकूल ढालना ही पड़ेगा। पूजीपति श्रेणी शौक से व्यभिचार करती है, साधनहीन श्रेणी पेट के लिये व्यभिचार सहती है। पूंजीपति श्रेणी की इस शक्ति का रहस्य यही है कि जीवन-रक्षा के लिये आवश्यक पदार्थ उत्पन्न करने के साधन उसके हाथ मे हैं। जो लोग अपने श्रम का भाग मुनाफ़े के कर के रूप मे उन्हें नही देंगे, उन लोगो को मालिक श्रेणी पेट भरने के लिये श्रम

का अवसर नही देगी। यह है 'पूजीवादी-प्रजातंत्र' मे मेहनत करने वाली मजदूर श्रेणी और सफेद पोश मध्यम श्रेणी पर पूंजी का निरंकुश शासन ! मुनाफा कमाने की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता ही पूंजीवादी शासन की कानूनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समानता है। इसका अर्थ है, जो चाहे मुनाफे की कानूनी-चोरी से, पैदावार के साधनों पर अधिकार करके, दूसरों के श्रम का फल चूसता जाय·····"

बहुत देर से चुप जिज्ञासु प्रश्न कर बैठे, "कानूनी-चोरी कैसे ?"

इतिहासज्ञ ने और भी उग्र स्वर में उत्तर दिया, "जैसे किसी जमाने मे औरंगजेब का हिन्दुओ से जजिया लेना और दास-स्वामियो का अपने दासों की सुन्दर पुत्रियो को अपने बिस्तर में डाल लेना कानूनी था, वैसे ही दूसरे के श्रम का फल हथिया लेना आज भी कानूनी है क्योंकि आज समाज का शासन और समाज की शस्त्र-शक्ति पूंजीपतियों के हाथ में है। शासक श्रेणी शस्त्र-शक्ति के बल पर अपने स्वार्थों को कानून का नाम दे देती है। सुनिये, कुछ बरस पहले तक शर्त-बन्द-मजदूरी (Indentured Labour)[1] कानूनी थी, आज नही रही। कानून कोई शाश्वत वस्तु नही है। जिस श्रेणी के हाथ शक्ति होगी, वह अपने हित के अनुसार कानून बना लेगी।"

इतिहासज्ञ का प्रभाव जमता देखकर सर्वोदयीजी अपनी पीठ पर तन कर टोक बैठे, "कानून से बड़ी चीज़ है नैतिकता !"

"शोषक भी नैतिकता का दम्भ करता है ?" वैज्ञानिक ने चुनौती दी, "किसी का धन चुराना, किसी से पैसा ठग लेना अनैतिक है या

---

१. भारत और दूसरे उपनिवेशों से मजदूरों को शर्तनामा लिखाकर निश्चित वर्षों के लिये निश्चित मजदूरी पर भर्ती किया जाता था और उन्हें अपने देश न लौटने देकर, उनके साथ गुलामो जैसा व्यवहार करके, मनमानी मेहनत कराई जाती थी। इस अन्याय के विरुद्ध संसार-व्यापी घोर आन्दोलन होने के बाद यह प्रथा अब कानूनन बन्द हो गयी है।

नही ? धन या पैसा बनता है श्रम से। श्रम ही वास्तव में धन है। पैसा बनाने की शक्ति जब तक मजदूर के शरीर में रहती है, उसका मुनाफे के रूप में चुरा लेना या ठग लेना नैतिकता है, कानूनी व्यापार है। जब वह शक्ति पैसे का रूप लेकर पूँजीपति की जेब या तिजोरी में चली जाये तो उसका चुरा लेना या ठग लेना अनैतिक है, चोरी है, डाका है। यह है पूंजीवादी कानून जो श्रम को अपमानित करता है, श्रम को लूट की चीज समझता है और पूंजी को पवित्र बना लेता है क्योंकि पूंजीपति या मालिक श्रम नहीं करता इसलिये अपने शासन मे वह सदा श्रम-शक्ति को अधिकारहीन और निर्बल बनाये रखता है, श्रम का अपमान करता है, श्रम न करने को आदर का लक्षण बना देता है। शोषक श्रेणी के प्रतिनिधि ऋषि यह उपदेश तो दे गये कि— "मागृधः कस्यस्विद्धनम्"[1] परन्तु उन्होंने यह नही कहा कि 'मागृधः कस्यचिदश्रमम्।'[2] क्योंकि श्रम वे करते नही थे। कोई उनका श्रम क्या लेता ? इससे भी अधिक चतुरता उन्होंने यह की कि जनता को समझाया—कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन्। अर्थात् तुम मेहनत करते जाओ, इस बात की चिन्ता न करो कि फल मिलता है या नही। कारण यह है कि कर्म का फल तो वे स्वयं खा लेना चाहते थे। श्रम के राज मे, समाजवादी शासन में, पूंजी को दूसरे का श्रम मुनाफे के रूप में हथिया लेने का अवसर नही रहेगा। जैसे पूंजीवादी शासन में पूंजी की चोरी अपराध है वैसे ही समाजवादी शासन मे दूसरे के श्रम की चोरी अपराध है[3] यह है श्रम की समाजवादी नैतिकता। दूसरी ओर है मुनाफे को न्याय मानने वाली, आपकी पूंजीवादी सरकार की

---

१. "किसी का धन लेने की इच्छा मत करो" ईषोपनिषद
२. "किसी का श्रम लेने की इच्छा मत करो !"
३. रूस के समाजवादी विधान के अनुसार मुनाफा या दूसरे के श्रम का भाग लेने वाले व्यक्ति नागरिक अधिकारों से वंचित समझे जाते है।

नैतिकता जो मजदूर श्रेणी से, उनकी एक-मात्र शक्ति हड़ताल द्वारा, अपने श्रम की लज्जाजनक लूट का विरोध करने का भी अवसर छीन लेती है। इस सरकार के लिये पूँजीपति का मुनाफा, पूँजी की बढ़ती ही राष्ट्रीय उद्देश्य है····· ।''

जिज्ञासु ने फिर टोक कर प्रश्न किया, ''राष्ट्र के औद्योगीकरण के लिये पूँजी की आवश्यकता है। पूँजी मुनाफे से ही पैदा होती है तो आप मुनाफे को अनैतिक और राष्ट्र-विरोधी कैसे कह सकते है ?''

जिज्ञासु के गम्भीर प्रश्न का उत्तर देने के लिये मार्क्सवादी अपने दाये हाथ से बायें हाथ की उँगली थाम कर मानो प्रश्न का उत्तर कई भागों मे देना चाहते है, गम्भीरता से बोले, ' देखिये, पूँजी वास्तव मे बचा कर रखी गयी ऐसी पैदावार है जिसे पैदावार के साधन का रूप दे दिया गया है या पैदावार में सहायता देने का साधन बना लिया गया है। यह प्रत्यक्ष सत्य है कि यंत्रो के इस युग मे पैदावार सामूहिक रूप से और साझे में की जाती है इसलिये समाज द्वारा की गयी पैदावार को यदि उत्पादक साधनों और उत्पादक पूँजी का रूप दिया जाता है तो वह समाज की ही वस्तु होनी चाहिये, एक व्यक्ति की नही।''

मार्क्सवादी ने दूसरी उँगली को छुआ, ''पैदावार की शक्ति पर समाज का अधिकार होने से पैदावार समाज-हित के दृष्टिकोण से होगी सामाजिक पैदावार का बड़ा भाग समाज के उपयोग से छीन कर अलग नही कर दिया जायगा। इससे समाज की समृद्धि बढेगी।''

मार्क्सवादी ने तीसरी उँगली को छुआ, ''जब पैदावार समाज के नियंत्रण मे सामाजिक उपयोग के लिये होती है, तब पैदावार की शक्ति को समाज के लिये उपयोगी पदार्थों के उत्पादन मे लगा कर, पैदावार को निस्सीम रूप से बढ़ाया जा सकता है। उस समय गाधीवाद का आदर्श 'अधिकांश को तो गरीब ही रहना है' हमारा आदर्श नही होगा। समाज का प्रत्येक व्यक्ति बिड़ला, टाटा और सिंहानिया की भाँति आराम, अवकाश और सुविधा चाहता है। यह प्रत्यक्ष अनुभव

है कि ज़ारशाही, पूंजीवादी रूस में मजदूरो की दुर्दशा भारत के मजदूरो जैसी ही थी परन्तु समाजवादी व्यवस्था कायम हो जाने से, पैदावार की शक्ति को व्यक्तिगत मुनाफे के लिये नही बल्कि सामाजिक नियंत्रण मे, सामाजिक हित के लिये बढाने से, आज रूस का मजदूर पहले को अपेक्षा पचास गुना अधिक समृद्ध है। आज रूस का मजदूर संसार के सब से धनी देश अमेरिका के मजदूर से भी अधिक सुखी है।''

मार्क्सवादी दूसरे हाथ की पहली उँगली थाम कर बोले, ''पूंजी के व्यक्तिगत अधिकार मे होने से, मुनाफे के रूप में समाज की पैदावार का बड़ा भाग समाज से छिन जाने पर, पैदावार की शक्ति तो बढेगी परन्तु समाज की खपत की शक्ति घट जायगी। संसार के सभी उन्नत पूंजीवादी देश इस संकट में फँसे हुये है।' दूसरी उँगली छूकर वे बोले, ''यह क्रम जारी रहने से और पैदावार का प्रयोजन व्यक्तिगत मुनाफा ही होने से, पैदावार को भी घटाना पडेगा; परिणाम मे समाज मे बेकारी होगी जैसा कि सभी पूंजीवादी देशो मे हुआ है। पूंजीपति श्रेणी सदा ही समाज मे कुछ न कुछ बेकारी को रखना चाहती है क्योकि मजदूरो को बेकारी द्वारा भूख का भय दिखा कर मजदूरी का दर नीचा रखा जा सकता है।''

अपनी उँगली छूकर वह बोले, ''जब पैदावार व्यक्तिगत मुनाफे के लिये की जायगी, तो पूंजीपति अपने सौदे का दाम ऊँचा रखने के लिये समाज की आवश्यकता से कम पैदावार करेगा, क्योंकि महंगाई रहने पर ही उसे अधिक मुनाफा होता है।''

उन्होंने अगली उँगली छुई, ''और जब पूंजीपति श्रेणी मे आपसी होड़ के कारण और किसी सौदे में मुनाफे की गुजाइश कम रह जायगी तो पूंजीपति असली माल में मिलावट करेगा, नकली माल बनायेगा। आज हमारे देश मे मुनाफा कमाने की होड़ बहुत अधिक है और समाज में खरीद सकने की सामर्थ्य बिलकुल कम हो जाने से बाजार घट गया है। इस कारण जिस चीज मे देखिये, धोखाबाजी पायेगे.....''

मार्क्सवादी, शायद गले मे कोई अवरोध आ जाने के कारण, जरा

अटके थे कि सर्वोदयीजी फिर अत्यन्त करुण स्वर मे बोल उठे, "आप अपनी हिंसा-वृत्ति के कारण सब पूँजीपतियों को चोर समझ लेना चाहते है, यह आपके मन की हिंसा है। आप यह भूल जाते है कि देश की इतनी बड़ी आर्थिक व्यवस्था को पूजीपति श्रेणी ने ही अपने-अपने परिश्रम और सुख-त्याग से धन की बचत कर बनाया है। यदि आप इन व्यवसायो का राष्ट्रीयकरण करना ही चाहते है तो आपको चाहिये कि पूँजीपति श्रेणी को समुचित मुआविजा दे। आपकी सरकार जमीदारी उन्मूलन का कार्य-क्रम लेकर चली परन्तु जमीदारों के मुआविजे के लिये निश्चित एक सौ अस्सी करोड़ रुपये मे से आपका किसान, दस गुना लगान की अदायगी की अन्तिम तारीखें तीन बार बदलने पर भी, अभी केवल छब्बीस करोड़ ही दे सका है।[1] शेष एक सौ चौवन करोड़ सरकार पर जमीदारो के कर्जो के रूप में रहेगा। यदि उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीयकरण किया जायगा तो सरकार उसका मुआविजा कहाँ से देगी? देश की गरीब प्रजा क्या इतना मुआविजा भर सकेगी?"

सर्वोदयीजी की इस दुहाई के उत्तर में कामरेड ने कहकहा लगा दिया और बोले, "पूंजीपति श्रेणी और गाँधी जी जैसे पूंजीवाद के समर्थको को गरीब प्रजा की अवस्था पर आँसू बहाते देखकर, हमें ऐसा जान पड़ता है कि पिंजरे मे बन्द चिड़ियाँ, अपनी मुक्ति के लिये पिंजरा तोड़ने की कोशिश कर रही है, यह देखकर चिडीमार आँखों में आँसू भर कर उन्हें समझा रहा है कि तुम मूर्खता कर रही हो। यदि यह पिंजरा टूट जायगा तो तुम आकाश मे उड़ने लगोगी और राह भटक जाओगी, बाज़ और बिल्लियाँ तुम्हे खा जायेगे। ठीक ऐसे ही आपको और आपकी सरकार को प्रजा पर सरकारी कर्ज़ बढ़ने की चिन्ता है। जमीदारों को मुआविजा देना काँग्रेस के एलान में कभी शामिल न था और न उद्योग-

---

१ जुलाई १९५० के पहले सप्ताह तक। अदायगी की तीसरी बार निश्चित की गई अन्तिम तारीख ३० जून १९५० थी।

धन्धो के राष्ट्रीयकरण के लिये जनता ने कभी मुआविज़े की बात सोची या मानी थी। क्या हम मुआविजा इसलिये दे कि अब तक हमे खूब लूटा गया है! १९३१ की कराची कांग्रेस मे कांग्रेस ने जमीदारी उन्मूलन और देश के उद्योग-धन्धों के राष्ट्रीयकरण का प्रस्ताव पास किया था। उस समय मुआविज़े का कोई चर्चा नही था। अब सरकारी व्यवस्था पूंजीपति श्रेणी के हाथ मे है। उनकी अपनी सरकार चाहे जैसे प्रजा की खाल खीच ले। राष्ट्र की सम्पूर्ण सम्पत्ति और पैदावार के साधन, राष्ट्र की मेहनत करने वाली श्रेणी की मेहनत का फल है। उस पर कुछ गिने-चुने पूजीपतियो का अधिकार होना अन्याय और अनैतिक है। समस्या है, मेहनत करने वालों की, मेहनत का फल चुरा लेने वालो से चोरी का माल बरामद करने की। इसका साधन है, समाज की सामूहिक शक्ति से चोरो का नियत्रण। चोरो को मुआविज़ा देने की सलाह केवल चोरो के दलाल, गठकतरे ही दे सकते हैं।"

विरोध मे सिर हिलाकर सर्वोदयीजी फिर बोले, "समूह की इच्छा की दुहाई देकर आप व्यक्ति पर अन्याय नही कर सकते। यदि आप व्यक्ति की स्वतन्त्रता छीन लेगे तो इससे समाज का भी नाश हो जायेगा। जिस समाज में व्यक्ति स्वतन्त्र नही, वह समाज पराधीन ही समझा जायगा। व्यक्ति ही समाज को बनाते है।"

कामरेड सर्वोदयीजी की बातों से झल्लाकर बोले, "जान पड़ता है, ईश्वर की प्रेरणा से आपका तर्क सदा गलत बात प्रमाणित करने के लिये ही चलता है। आपने यह तो कह दिया कि व्यक्ति ही समाज को बनाता है परन्तु क्या आप समाज के बिना व्यक्ति की कल्पना कर सकते हैं? आप जैसे सैकड़ो व्यक्ति न हो तो समाज तो रहेगा ही। यदि पूंजीपति को मुनाफा कमाने की व्यक्तिगत स्वतत्रता समाज का हनन करने से ही रह सकती है तो कोई नैतिकता उसे स्वीकार करने के लिये तैयार नही हो सकती। कितना बड़ा अन्धेर है कि यदि एक आदमी किसी को धमकाकर उसकी जेब से चार पैसे छीन ले तो आप

उसे जेल भेज देते है, परन्तु पूजीपति एक हजार मजदूरों को तड़पाने का भय दिखाकर, महीनों और वर्षों तक उनकी मेहनत का फल (पैसा) बटोरता रहे, तो अपराध नही। किसी का गला घोट कर यदि कोई आदमी एक रुपया छीन ले तो फासी पाता है परन्तु आटे में इमली का बीज और पत्थर मिला कर, हजारो की जान लेकर मुनाफा कमाने वालो को, तेल में भडभड़ा मिलाकर लोगो को महामारी के पेट मे ढकेलने वाले मुनाफाखोरो के लिये, आपके पास कोई दण्ड नही..... ऐसे कितने आदमियो को फासी चढाया है आपने ?"

"यह तो व्यक्तिगत अपराध है....." सर्वोदयी जी कहना चाहते थे परन्तु वैज्ञानिक टोक बैठे।

"व्यक्तिगत अपराध है, परन्तु इस अपराध का आधार मुनाफा कमाने का उद्देश्य और मुनाफा कमाने की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता है, समाज के विरोध मे व्यक्ति का स्वार्थ है। इसी सिद्धान्त पर चल कर सरकारी नौकर घूस खाता है। चोरबाजारी और सौदे मे धांधली करने वाले, मुनाफ़े के लिये अनुचित अवसर चाहने वाले ही हजारों रुपये की रिश्वते देते है। सरकारी अफसर इस रिश्वत को पूजीपति के मुनाफ़े मे अपना नगण्यमात्र सा भाग समझता है। जब समाज की शासक शक्ति मुनाफ़े के अधिकार की स्वतंत्रता भोग रही है और उनके बड़े-बडे कारिन्दे उनके अधिकार की रक्षा करने के इनाम में लाखों रुपये जेब मे डाल रहे है, तो मामूली सरकारी नौकर क्या करें ? वह पांच-दस रुपया ही रिश्वत ले लेते है और इसे अपना मुनाफ़ा समझते हैं। राज्य ही तो मुनाफा कमाने के सिद्धान्त का ठहरा। तनख़ाह तो हुई केवल मजदूरी, रिश्वत हो गई मुनाफ़ा !"

सर्वोदयीजी फिर बोले, "आप व्यक्तियो के लोभ को समाज का अपराध बना देना चाहते है। यह नहीं सोचते कि व्यक्ति की आत्मिक उन्नति के बिना समाज सुधर नहीं सकता। पहली बात है, व्यक्तिगत आत्मिक उन्नति !"

सर्वोदयीजी के वही बात बार-बार दोहराने से वैज्ञानिक ने माथे पर हाथ मार कर उत्तर दिया, "सुनिये, हम तो पहले अपने शरीर की रक्षा चाहते है। आप शरीर-रक्षा के अवसर के बिना ही आत्मिक उन्नति कर लेना चाहते है। बेहतर हो आप ऐसी जगह जाइये, जहाँ शरीर-हीन आत्माये बसती हो, यानो मरघट में···· ···"

बात समाप्त करते ही वैज्ञानिक उठ खडे हुये और उनकी देखा-देखी थके हुए दूसरे लोग भी।

• •

३

पूँजीवाद की भोग्य महिला और समाजवाद की आत्म-निर्भर नारी !

क्लब मे बात ढीले-ढाले ढंग से चल रही थी, कभी एक विषय पर और कभी दूसरे पर। शुद्धसाहित्यिक जी अंग्रेजी के एक 'चित्रमय' साप्ताहिक के पन्ने पलट रहे थे। घड़ियो का विज्ञापन देखते तो ब्योरा पढने लगते थे।

भद्रपुरुष ने चुटकी ली, "अरे भाई शुद्धसाहित्यिक जी, कोई घड़ी पसन्द नही आयी ?"

"घड़ियाँ तो बीसियो पसन्द है" शुद्धसाहित्यिक ने उत्तर दिया, "परन्तु उनके दाम पसन्द नही।" पत्र मे एक घड़ी का चित्र दिखाते हुए वे बोले, "यह देखिये न, दाम चार सौ पचहत्तर रुपये। एक भले आदमी का साल भर का गुजारा।"

"तो कोई मामूली सी ले लीजिये—तीस-चालीस की" भद्र पुरुष ने सुमति दी।

"घड़ी मामूली लेने से फायदा।" मौजी ने इस सुमति का विरोध किया, "समय ही देखना हो तो डाकखाने और म्युनिसिपैल्टी के घण्टा-घरो में देखा जा सकता है। शहर भर में घड़ियाल गरजते रहते हैं। मन का संतोष भी तो कोई चीज़ है। क्यों शुद्ध साहित्यिक जी, दिल की भी तो बात है।....जेब खाली है तो क्या !"

"तो दिल को ही जेब में डाल लो मित्र !" इतिहासज्ञ चुटकी से मुस्करा दिये और फिर बोले,"चार सौ पचहत्तर रुपये मोल केवल समय जान सकने का नही है। घडी मर्दो का गहना भी तो है। बढिया फाउन्टेनपेन, बढ़िया घडी, एकाध अँगूठी, यही मर्दों के गहने है। गहनो की कीमत का क्या कहना ? यह तो शौक और प्रतिष्ठा की कीमत है। हमारे बुजुर्ग आजकल के राजा-महाराजाओं की तरह कण्ठे, कड़े और मोतियो की बालियाँ पहना करते थे। हम लोग केवल घड़ी, कलम और अँगूठी से ही अरमान पूरे कर लेते है।"

एक ओर दीवार के साथ बैठी श्रीमतीजी बोल उठी, "ठीक तो कह रहे है इतिहासज्ञजी, मर्दो को भी तो गहनों का चाव होता है लेकिन गहनो के लिये बदनाम होती है केवल स्त्रियाँ बेचारी।"

"गहना समृद्धि का चिन्ह है और समाज मे समृद्धि का सम्मान है। चाव गहनों का मर्दो को भी जरूर होता है" वैज्ञानिक बोले, "लेकिन मर्द गहनों के लिये औरतों की तरह नाक-कान तो नही फाड़ लेते ! कारण शायद यह है कि हमारे समाज मे औरत की स्थिति पुरुष को रिझा सकने की शक्ति पर ही निर्भर करती है। वह बेचारी पुरुष को रिझाने के लिये अपने अस्तित्व तक को निछावर कर देना चाहती है क्योंकि जिस नारी पर कोई पुरुष न रीझे, उस बेचारी का अस्तित्व ही क्या ?"

'वाह, स्त्रियाँ कहाँ पुरुषों को रिझाती है !' श्रीमती जी ने प्रकट नाराजी से विरोध किया, "पुरुष ही तो स्त्रियों के पीछे भागते है। वे बेचारी तो घरों में बन्द रहती हैं।"

बहुत जबरदस्त बात पकड़ पाने के उत्साह मे दोनो हाथ उठाकर वैज्ञानिक ने कहा, "बिलकुल ठीक कहा आपने। आपकी दोनों बातें सत्य है। हमारे समाज मे पुरुष स्त्रियो के पीछे भागते है क्योंकि उन्हे स्त्री के पीछे भाग सकने का साहस और अवसर है। स्त्रियाँ क्योकि घरों में बन्द रखी जाती हैं, इसलिये वे जो कुछ चाहती हैं, पुरुष को

रिझा कर उसकी प्रसन्नता से ही पा सकती हैं। रिझा सकने योग्य बनने के लिये वे अपने नाक-कान कटाती—क्षमा कीजिये, नाक-कान छिदाती हैं, हाथ-पाँव और मुंह पर रंग पोतती हैं। सुनिये, वे कुछ और ज़ोर से बोले, "शादी के लिये लड़के-लड़की के चुनाव के समय लडकी का रूप देखा जाता है और लड़के की आमदनी और जायदाद देखी जाती है, क्या मतलब है इसका ?"

श्रीमतीजी ने फिर विरोध किया, "वाह, बहुत मालूम है आपको ! आजकल तो सब पूछते है कि लड़की कितना पढ़ी है।"

वैज्ञानिक फिर बोले, "स्त्रियों की पढ़ाई उनकी रिझावट जानने के लिये ही पूछी जाती है। भाभी जी, आप जानती है न बोलने वाली गुडिया की कीमत अधिक होती है।"

"स्त्रियो को आप गुड़िया-खिलौना समझते है ?" महिला ने अधिक नाराज होकर फटकार सी बतायी।

सर्वोदयीजी महिला की सहायता के लिये गर्दन ऊँची कर बोले, "यह पश्चिमी संस्कृति का कुप्रभाव है कि आप नारी को केवल मन-बहलाव की वस्तु समझते हैं।"

"पश्चिमी संस्कृति का कुप्रभाव !" इतिहासज्ञ ने आँखे फैलाकर विस्मय प्रकट किया और बोले, "पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव तो यह है कि दो महिलाये आप के साथ बैठकर बात कर रही हैं। पूर्वी संस्कृति के अनुसार तो महिलाओं का काम घर के भीतर बैठ कर तरकारी के लिये मसाला पीसना होना चाहिए था या बहुत होता तो वे चिक की आड़ में बैठ कर हमारी-आपकी बाते सुन लेती।"

राष्ट्रीयजी बोल उठे, "स्त्रियों को घर के भीतर बन्द रखने की संस्कृति मुस्लिम सभ्यता का कुप्रभाव है। हमारी संस्कृति मे तो स्त्रियो का स्थान बहुत ऊँचा था।"

"जी हाँ," महिला ने अभिमान से समर्थन किया, "स्त्री घर की स्वामिनी होती थी। गार्गी आदि स्त्रियाँ वेदों की ऋचाओ की व्याख्या

करती थी। लीलावती ने गणित लिखी थी। यह तो विदेशी संस्कृति का फल था कि स्त्रियो को पराधीन बना दिया गया ?''

इतिहासज्ञ ऊँचे स्वर में प्रश्न कर बैठे, ''क्यों बहिन जी, मनुस्मृति क्या औरंगजेब ने लिखी थी या हिन्दू संस्कृति के कन्यादान के पुण्य का विधान मुग़लो ने किया था ? दान या मोल-तोल कभी स्वतन्त्र व्यक्तियों का नही किया जा सकता। दान किया जा सकता है केवल पशुओ और गुलामो का। आपकी संस्कृति मे कन्यादान महान पुण्य और पवित्र कार्य समझा जाता था। आप ही बताइये, जिस व्यक्ति को आप दान मे दे सकते है, आपके घर में उसका क्या अधिकार हो सकता है ? या जो व्यक्ति दान के रूप मे आपके परिवार मे आयेगा, उसकी स्थिति घर के लोगों के समान हो सकेगी ?''

सर्वोदयीजी ने गम्भीरता प्रकट करने के लिये एक गहरा निश्वास लेकर उपदेश दिया, ''स्पर्धा और अधिकार के लोभ की प्रवृत्ति आपके मन में इतनी समा गयी है कि पति-पत्नी के पवित्र, आत्मिक सम्बन्ध मे भी आप दासता, स्वामित्व और अधिकारो के बंटवारे का प्रश्न उठाने लगे है। इसका परिणाम क्या हो रहा है ?'' द्रवित स्वर मे उन्होंने प्रश्न किया और फिर कोमल स्वर में स्वयं उत्तर देने लगे, ''इसका परिणाम हो रहा है, आचार की उच्छृङ्खलता और वैमनस्य ! हमारे समाज का आदर्श तो पति-पत्नी में अटूट आत्मिक सम्बन्ध, जन्म-जन्म का आत्मिक सम्बन्ध था। पति के बिना पत्नी जीवित नहीं रह सकती थी। उस सम्बन्ध की मधुरता····''

''यह आप अपने स्वप्न और स्वार्थ और कल्पना की बात कर रहे है।'' कामरेड ने टोक दिया।

इतनी अच्छी बात कहते-कहते सर्वोदयीजी को टोक देना श्रीमती जी और महिला को अच्छा न लगा। उन्होने असंतोष से कामरेड की ओर देखा परन्तु कामरेड कहते ही गये :

''यही तो हमारे पूर्वजों का चातुर्य था। स्त्री को आर्थिक रूप से

अपने वश मे रखने के बाद उन्होंने उस पर विश्वास का मानसिक बन्धन भी लगा दिया। अर्थात् यदि स्त्री-पुरुष के अत्याचार से व्याकुल होकर, प्राणो की बाजी लगा कर भी भागना चाहे तो भाग न सके। स्त्री को यह भय रहे कि भाग कर क्या करूँगी ? मर कर भी तो इसी के पल्ले पड़ना होगा। आप पति-पत्नी के आत्मिक सम्बन्ध की, जन्म-जन्मान्तर के प्रेम की बात करते है परन्तु यथार्थ स्थिति क्या है ? हमारी चाची पन्द्रह बरस से हर मास नियमित रूप से तीन-चार बार पिटती आयी है। चाचा रात मे दुकान से लौटते है तो वे प्रायः मुँह फुलाये, पीठ दिखा कर उनका स्वागत करती है। चाचा अपना क्रोध थप्पड़, मुक्के और लात से प्रकट करते हैं। चाची उन्हे मुँह चिढ़ा और दाड़ी-जार कह कर वरदान देती है—तेरे हाथो में कोढ़ फूटे। अपने माँ-बाप को कोसती है, जिन्होने ऐसे 'मसान' के गले बाँधकर जिन्दगी भर का रोना कर दिया। नित्य भगवान को गुहारती है, रामजी मुझे उठा लें तो इस चण्डाल से पीछा छूटे। इस पर भी करवाचौथ का व्रत प्रतिवर्ष करती है कि फिर वही पति अगले जन्म मे मिले। आप ही बताइये, यह क्या चाची की आत्मा की पुकार है ? हम ऐसे एक नहीं बीसियो परिवारो को जानते है। आप भी जानते होगे। यथार्थ तो यह है, आप अपने समाज मे नारी के महत्व की डीग हांकते है। नारी जितनी असहाय हिन्दू-द्विज समाज में है वैसी और किसी समाज में नहीं।"

इतिहासज्ञ बोल उठे, "सीधी बात है, आप ही बताइये, सर्व-साधारण लोग घर में लडका होने से खुश होते है, या लड़की ? स्वयं माताये क्या चाहती है ? अपने पेट से लड़के का जन्म चाहती हैं या लड़की का ? माँ की यह इच्छा कि उसके गर्भ से माँ (लड़की) नही, बाप (लड़का) ही पैदा हो, माँ की दयनीय और पराधीन परिस्थिति का निर्विवाद प्रमाण है या नही !"

भद्रपुरुष ने बीच-बचाव किया, "यह तो इसलिये कि परिवार का पालन पुरुष करता है।"

इन्हे टोक कर मार्क्सवादी बोल उठे, "जो परिवार का पालन करता है, वही परिवार का स्वामी होता है, परिवार पर उसी का शासन होता है। शासन और शासित मे क्या समानता ? समाज परिवारो का समूह है इसलिये समाज पर पुरुष का शासन है। यदि स्त्री आर्थिक रूप से पुरुष के आधीन और आश्रित रहेगी तो समाज मे उसकी स्थिति पुरुष के समान कभी नही हो सकेगी। समाज में पुरुष के समान अधिकार और स्थिति पाने के लिये स्त्री का आर्थिक रूप से आत्म-निर्भर होना आवश्यक है ?"

शुद्धसाहित्यिक अपने हाथ के चित्रमय साप्ताहिक के पन्नो के बीच उँगली रख उसे बन्द करते हुये बोले, "आप चाहते है कि परिवार में जो कुछ मधुरता है, नारी को स्नेह और ममता का आकर्षण मान कर, उसे पत्नी और माता मान कर उसके चारो ओर परिवार का जो जगत घूमता है, वह छिन्न-भिन्न हो जाय ? नारी को घर की सुरक्षा और प्रतिष्ठा से धक्का देकर बाजार में दुकानदारी, मिल मे मजदूरी और दफ़्तर में किरानीगिरी के लिये भेज दिया जाय ? क्या होगा ऐसे स्वार्थी समाज का चित्र ?····वह समूचा समाज रेल के स्टेशन पर जगह के लिये झगड़ती भीड़ का सा हो जायेगा, जिसमें कोमल शिशु माँ की ममता की रक्षा से वंचित होकर गलियो में मारे-मारे फिरेंगे और पुरुष ममताहीन हिंस्रपशु की भाँति खूखार हो जायेगे ?"

शुद्धसाहित्यिक के स्वर में करुणा का कम्पन और आँखो मे क्रोध की चमक आ गयी। उनकी व्याख्या से समाज के नाश की आशंका का आभास पाकर श्रीमती और महिला के कोमल भावों पर आतंक छा गया। शेष लोग भी उस आतंक को अनुभव कर रहे थे।

यह स्थिति देखकर सर्वोदयी जी ने उँगली उठा कर मार्क्सवादी को चेतावनी दी, "हमारे समाज की इस परम्परागत शांति पर आघात करने में आपका आर्थिक लोभ ही प्रधान कारण है। आप स्त्री के श्रम से लाभ उठाना चाहते है, आप उसकी कमाई खाना चाहते है परन्तु

याद रखिये, मातृत्व का कर्तव्य पूरा कर नारी जिस पद और सेवा की अधिकारी बन जाती है, उस पद और अधिकार से उसे गिराने की चेष्टा के अन्याय से समाज खण्ड-खण्ड हो जायेगा। पुरुष उस पाप का प्रायश्चित कभी नही कर पायेगा। मातृत्व के पद से बड़ा पद और क्या है? मातृत्व के अधिकार से बड़ा अधिकार दूसरा कौन है? मातृत्व के सम्मान से बड़ा सम्मान कहाँ है? नारी का जितना आदर हमारे समाज ने किया है, उतना संसार में कोई नही कर सकता। भगवान को जगत-माता कहा गया है। हमारे समाज ने नारी को माता कह कर उसका आसन भगवान के समीप रक्खा है।" सर्वोदयी जी ने समर्थन की आशा से महिला और श्रीमतीजी की ओर देखा। दोनों वास्तव में ही सन्तुष्ट जान पड़ी।

परन्तु वैज्ञानिक इस गम्भीर और भाव पूर्ण वक्तृता से कुछ भी प्रभावित न होकर पूछ बैठे, "यदि सच कहने के लिये अभयदान मिल सके तो एक बात कहूँ?"

"कहो जी कहो!" मौजी ने बढावा दिया।

"सुनिये" वैज्ञानिक बोले, "माँ बनने का हमारे समाज में कोई सम्मान नहीं है। नारी का स्वतन्त्रता से और अपनी इच्छा से माँ बन जाना ही सब से बड़ा अपराध है। नारी का आदर अपने पति की पत्नी बनने और अपने पति के लिये सन्तान जनने मे ही है।"

इस बात से महिला को क्रोध आ गया और उन्होंने अपना मुह दीवार की ओर कर लिया।

श्रीमतीजी ने लज्जा प्रकट करने के लिये आँखे झपक कर झुका ली।

सर्वोदयी जी ने वैज्ञानिक की ओर घूर कर फटकार बतायी, "आप में सभा में बैठने योग्य शालीनता नही है। इस धृष्टता के लिये आपको क्षमा माँगनी चाहिये!"

बात आगे न बढ़ने देने के लिये वैज्ञानिक बोले, "हमने तो पेशगी

आप से अभयदान और क्षमा माँग ली है। आपके पास जितनी और क्षमा हो, वह भी दे डालिये ?"

'आपका मतलब है" गम्भीर होकर मौजी ने प्रश्न किया, "कि समाज में विवाह के बिना ही सन्तान पैदा हो जाया करे !'

क्षमा माँगने के लिये विवश होने की झेंप की परवाह न कर वैज्ञानिक ने उत्तर दिया, "आत्मिक सम्बन्ध से तो सन्तान पैदा हो नही सकती। स्त्री पुरुषो की साझी सन्तान पैदा होना ही उनका विवाह है। विवाह के बिना सन्तान हो कैसे सकती है।

लज्जा को वश कर श्रीमती जी तीखे स्वर में प्रश्न कर दिया, "वाह साहब, आपका मतलब है, पुरुष पर सन्तान के पालन की जिम्मेदारी न हो !"

मार्क्सवादी बोल उठे, "अपनी सन्तान के पालन की जिम्मेदारी तो नैतिक और प्राकृतिक जिम्मेदारी है·····"

इन्हे टोक कर वैज्ञानिक ऊँचे स्वर में बोले, "हाँ है, परन्तु विवाह की जिम्मेवारी को जबरदस्ती लादना आर्थिक बंधन है। आत्मिक सम्बन्ध और जन्म-जन्मान्तर का प्रेम तो नही।"

शुद्धसाहित्यिकजी ने चुटकी ली, "तो प्रेम क्या है, उच्छृङ्खलता, अनाचार ?"

"उच्छृङ्खलता तो तब होती है, जब प्रेम दिल बहलाव के लिये होता है और कला के लिये कला होती है।" वैज्ञानिक ने उत्तर दिया, "हम तो प्रेम को जीवन के विकास और रक्षा का साधन मानते है। वह केवल व्यक्तिगत वस्तु नही, सामाजिक कर्तव्य के आधार पर दो व्यक्तियों का सम्बन्ध है। वास्तविक बात यह है कि आप स्त्रियो को समझा देना चाहते है कि विवाह से उन्हे मातृत्व का महान पद मिल जाता है, एक पुरुष पर उनका अधिकार हो जाता है। असलियत यह है कि नारी आर्थिक बंधन मे बंध कर पुरुष के वश हो जाती है···"

इन्हें रोक कर इतिहासज्ञ बोले, "माँ के आदर का इतना शब्द-

जाल और आडम्बर बाँधने से क्या लाभ ? अपने वश के लिये सन्तान उत्पन्न करने के प्रयोजन से जिस नारी को आप दान में अथवा मोल मे लाते है; वह माँ बन जाने पर भी आपकी ही चीज रहेगी, आप उसकी चीज नही बन जायेंगे । आप धरती को भी माता कहते हैं और उसके मालिक बन कर उसकी खरीद-फरोख्त करते रहते है । गाय को भी माता कह कर उसके गले में रस्सी बाँधे रहते है । वह दूध देती है तो उसे पुचकारते भी है और गैया माता के सीग दिखाने पर लाठी से उसकी खबर भी लेते है ।"

महिला ने विस्मय से टोक दिया, "आप क्या माता के पद का भी आदर नही करते ?"

इतिहासज्ञ ने विनय से हाथ जोड़ दिये, "मै आपका आदर अवश्य करता हूँ परन्तु मै यह कैसे कह दूँ कि माता कह कर मै जिसका आदर करता हूँ, वह मेरे पिता की प्रेयसी नही है और मेरे भावी पुत्र की आदरणीय माता को मेरी प्रेयसी नही बनना पड़ेगा ?"

श्रीमती को हँसी आ गयी, इसलिये उन्होने साड़ी का आंचल होठों पर रख कर खाँसने के बाहने मुख दूसरी ओर कर लिया । दूसरे लोगो के ओठो पर भी मुस्कराहट आ गयी ।

महिला इधर-उधर लोगो के चेहरे देखकर बात समझ पाने का यत्न कर रही थी ।

सर्वोदयीजी ने क्रोध का पुट मिले गम्भीर स्वर मे चेतावनी दे दी, "असभ्यता क्या है ?...." क्या यह असभ्यता है कि आपकी माता आपके पिता की पत्नी है ? क्या माता का गौरवमय पद पाने के लिये पहले किसी की प्रेयसी होना आवश्यक नही ? यदि माता का पद गौरव-मय है तो प्रेयसी का पद गौरवमय क्यो नही ? माता के गौरवमय पद का परमिट प्रेयसी बनने से ही मिलता है । माता का पद तो केवल प्रेयसी हो सकने की परीक्षा मे पास होने का प्रमाण पत्र ही है ।

"और याद रखिये," वे चेतावनी के लिये सर्वोदयीजी की भाँति

उँगली उठाकर बोले, "आपकी संस्कृति मे नारी का गौरव उसके अपने व्यक्तित्व मे नही है। उसका गौरव किसी की श्रीमती बन जाने में ही है। वह किसी की बेटी, किसी की बहू, किसी की माँ है। वह स्वय कुछ नही है। आपके समाज मे नारी को उसके व्यक्तिगत नाम से पुकारना उसका अपमान है। उसे अमुक की श्रीमती, अमुक की माँ या अमुक की बहन कहना ही उसका सम्मान है। अर्थात नारी अपने व्यक्तित्व को प्रकट करे तो वह उसकी निर्लज्जता है। वह पुरुष की छाया मे छिपी रहे तो उसका सम्मान है। कैसी गुलामी सिखा दी है आपने स्त्री को····?"

कामरेड बोले, "वह तो केवल समाजवादी संस्कृति है, जिसमे नारी का अपना अस्तित्व है। वह अमुक की ही कुछ न होकर स्वयं भी कुछ होती है। जहाँ पुरुष के लिये प्राप्य सभी अवसर नारी के लिये भी सुलभ है। जैसे आप बाप बनने के साथ ही प्रोफेसर, इंजीनियर और डाक्टर बन सकते है, वैसे ही रूस में नारी माँ बनने के साथ ही, समाज के एक व्यक्ति के नाते समाज का महत्वपूर्ण अंग भी बन सकती है। वहाँ स्त्रियो की आपके देश की तरह, केवल चौके और बिस्तरे के लिए उपयोगी बनाकर सुरक्षित नही रखा जाता।"

श्रीमती जी और महिला मानो मानसिक आघात से दीर्घ साँसे ले रही थी। जिज्ञासु, भद्रपुरुष और मौजी भी जैसे सोचने के लिये विवश हो गये थे। इस स्थिति का उपाय करने के लिये सर्वोदयीजी ने तुरन्त प्रश्न किया, "तो आप चाहते है, हमारे समाज में भी स्त्रियो को रूस की तरह सामाजिक सम्पत्ति बना दिया जाये ?"

खिन्न स्वर मे मार्क्सवादी ने उत्तर मे प्रश्न किया, "आपने यह प्रश्न अज्ञान के कारण किया है अथवा यह धूर्तता है ? आप स्त्री को व्यक्तिगत सम्पत्ति मानते हैं, इसीलिये उसके सामाजिक सम्पत्ति बन जाने की आशा भी आपके मन में होती है। समाजवादी विचारधारा के अनुसार स्त्री को सम्पत्ति नही समझा जा सकता। उसका दान नहीं

किया जा सकता। उसे खरीदा और बेचा नही जा सकता। वह किसी भी प्रकार की सम्पत्ति नही, स्वतंत्र आत्म-निर्भर व्यक्ति है। जिन लोगो में स्त्री को व्यक्तिगत सम्पत्ति समझने का संस्कार चला आता है, उन्ही के मन में स्त्री के सामाजिक सम्पत्ति बन जाने की कल्पना उठ सकती है। जो लोग स्त्री को पुरुष के समान ही समाज का अंग समझते है; उनके मन में स्त्री के सामाजिक सम्पत्ति बन जाने की कल्पना नही हो सकती। रूस के समाजवादी समाज मे तो स्त्री आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर है। वहाँ समाज मे नारी उतना ही अधिकार रखती है जितना कि पुरुष।"

सर्वोदयीजी ने फिर प्रश्न कर दिया, "क्या हमारे देश की नारी श्रम में पुरुष का हाथ नही बँटाती ? आप देहात मे जाकर देखिये, वही तो असली देश है।"

"बटाती क्यों नही ?" मार्क्सवादी ने उत्तर दिया, "परन्तु श्रम मे हाथ बटाने वाली नारियो की स्थिति आपके समाज में सम्मान-जनक नही समझी जाती। सिर पर पानी का घड़ा, उपलो की टोकरी या ईधन का गट्ठा ढोने वाली अथवा मजदूरी करने वाली नारी के लिये आप राह छोड़कर अलग नही हो जाते। उसके सामने संयत भाषा का प्रयोग आप आवश्यक नही समझते। यह सब आदर होता है उन नारियो का जो पैदल चल सकने योग्य नही समझी जाती, जो अपने हाथो कोई काम नही करती। हमारे सम्मानित समाज में नारी के लिये आदर की परम्परागत धारणा यह है कि वह पदार्थो की पैदावार में सहायक होने के लिये नही है। वह केवल भोग का साधन है। 'लडकी को पढ़ा-कर क्या नौकरी करानी है ?' यह है आपके समाज की भावना। बडे आदमी लड़की को इसलिये पढ़ाते है कि वह मँजे हुए और सुथरे ढंग से बात-चीत और व्यवहार कर सके, पति-रूप मे किसी बड़े आदमी को पा सके। इसलिये सम्मानित समाज की नारी, पुरुषार्थी और बलवान होना तिरस्कार का कारण और कोमल तथा निर्बल होना आदर

का कारण समझती है। इस 'गाड़ी-साड़ी' समाज की सम्मानित नारी खाना पकाने के लिये रसोइया, बर्तन और मकान साफ करने के लिये कहार, कपड़ा धोने के लिये धोबी, सवारी के लिये गाड़ी और अपना बच्चा खिलाने के लिये आया माँगती है। वह अपने बढ़ाये हुए और रंगे हुये नाखून दिखा कर विश्वास दिलाना चाहती है कि उसके हाथो को कोई काम नही करना पड़ता। वे रामलीला की सजी हुई झाँकी या मोम के ताजिये की तरह समाज के लिये केवल दिखाने की और 'साहब' के लिये खेलने की वस्तु है। साहब अपने भोग का गौरव दिखाने के लिये उसका प्रदर्शन करता है। श्रीमती का यह बनाव-सिंगार भी उनका अपना गौरव नही, वरन् उनके मालिक का ही गौरव है, जिनके नाम का टिकट मेम साहब पर लगा है···"

शुद्धसाहित्यिक जी ने इन्हे टोक दिया, "आप क्या बकते जा रहे है? समाज की सम्पूर्ण संस्कृति और परिष्कार को गाली दिये जा रहे है!"

मार्क्सवादी बिगड उठे "आपके विचार में समाज के लिये आवश्यक पदार्थों की पैदावार और कार्यो मे भाग न लेना और अपने भाग से कही अधिक खर्च कर खा जाना ही परिष्कार और संस्कृति है?··· हम इस संस्कृति और परिष्कार से मुक्ति ही चाहते है।"

भद्रपुरुष गम्भीरता से बोले "परन्तु ऐसा समाज तो गिना-चुना है। मध्यम श्रेणी और निम्न-मध्यम-श्रेणी की स्त्रियाँ तो घरो का सब नही तो बहुत सा काम-धन्धा करती ही है, परिवार का सब बोझ उन्हीं के कन्धो कर होता है।"

सहारा पाकर श्रीमतीजी बोली, "जी हाँ, और क्या? दिन भर काम से छुट्टी नही मिलती। घर के चौके-चूल्हे का काम ही कितना होता है? सुबह का चौका दोपहर तक ख़त्म होता है और दोपहर से रात के चौके का काम शुरू····"

"आप ठीक कहती है," मार्क्सवादी ने सहानुभूति से स्वीकार किया, "मध्यम और निम्न-श्रेणी की स्त्रियो का पूरा जीवन चौके और झाड़ू

मे ही जाता है परन्तु यह एक ओर समाज के साथ और दूसरी ओर स्वयं निम्न-मध्यम-श्रेणी की स्त्रियो के साथ भी कितना बडा अन्याय है कि समय का आधा भाग केवल खाना पकाने की ही सेवा मे लगा रहे। समाज की श्रमशक्ति का यह कितना बडा अपव्यय है ? एक स्त्री जो समाज के लिये डाक्टर का, मैनेजर का, अध्यापक का, क्लर्क का, स्टेशन मास्टर और डाक बाबू का, फोटोग्राफर का, दर्जी का, कम्पोजीटर का काम कर सकती है, आयु भर केवल खाना बनाने का काम करती रहे और दिन भर की मेहनत के बावजूद अपने पेट की रोटी के लिये एक मर्द की मोहताज बनी रहे ?"

शुद्धसाहित्यिक जी ने विद्रूप से प्रश्न किया, "आप चाहते हैं कि सब लोग होटलो का खाना खाया करे ?"

"होटल का खाना भला किस काम का ?" श्रीमतीजी ने उसका समर्थन किया।

वैज्ञानिक बोले, "आपका मतलब है कि कुछ लोगों के चटोरपन के लिये समाज का आधा अंग रसोइया बना रहे ? खाना क्या स्त्रियों के हाथ से ही स्वादिष्ट बनता है। उनकी हथेली मे मसाला और घी तो पसीजता नही। होटलो में जैसे खाने वाले होंगे वैसा ही खाना बनेगा। बड़े-बड़े होटलों मे खराब खाना खाने के लिये ही लोग इतना दाम देते होंगे ? छोटे-मोटे होटलो में केवल गिने-चुने, बे ठौर-ठिकाने के लोग कभी-कभी जायंगे तो होटल से मुनाफा कमाने वाला उतने से ही गुजारा निकालेगा। लेकिन यदि जाने-पहचाने लोग नित्य आने लगेंगे तो बात दूसरी होगी। खाना जितने समय में दो आदमियो का बनता है उतने ही समय में पाँच का, और लगभग उतने ही ईधन में कमी और मँहगी के इस जमाने मे प्रत्येक घर से फेकी जाने वाली जूठन का भी अनुमान कीजिये। काम चाहे जितनी बचत से और छोटे परिमाण में किया जाय, कुछ न कुछ छीजन तो जाती ही है। यदि खाना सामूहिक रूप से बनने लगे तो समाज के कितने व्यक्ति दूसरे उपयोगी कामो के लिए मिल

सकेगे ! समाज का कितना अपव्यय बचेगा ! सबसे बड़ी बात; नारी आर्थिक रूप से पुरुषो पर निर्भर न रहने के कारण, समाज में स्वतन्त्र और आत्मनिर्भर व्यक्ति बन सकेगी ।"

"आप समझते है, हर बात में रूस की नकल कर लेना ही मुक्ति का मार्ग है !" सर्वोदयीजी ने विस्तृष्णा से मुस्कराकर उत्तर दिया, "हमारे देश में फिलहाल मर्दों को ही रोजगार नही मिल रहा, आप स्त्रियो को भी रोजगार ढूंढ़ने के लिये कहिये, बेरोजगारी बढे, आर्थिक संघर्ष और बढ़े ।"

मार्क्सवादी ने उत्तर दिया, "जिस ढंग से रूप को उन्नति करने में सफलता मिली है, उस ढंग को हम केवल इसीलिये न अपनाये कि वह रूस का ढंग है, यह भी क्या दलील है श्रीमान !" वे ऊँचे स्वर मे बोले, "घरों मे बन्द, केवल रसोई बनाने में जिन्दगी काट देने वाली स्त्रियाँ बेकार नही तो क्या है ? आपको समाज में बेकारी का भय तो दीखता है परन्तु यह नही दीखता कि आजकल समाज के अधिकांश लोगों की नितान्त आवश्यकताये भी पूरी नही हो रही है ? समाज मे बेकारी भी हो और समाज की आवश्यकताये भी पूरा न हो सकने में, आपको कोई सम्बन्ध नज़र नही आता ?"

"इनके विचार में", कामरेड ने टोक दिया "लोगों को बेकार रहना और उनकी आवश्यकताये पूरी न हो सकना, पूर्व जन्म के कर्मों का फल और भगवान की इच्छा है ।" कारमेड हँस दिये परन्तु दूसरे लोग प्रश्न की जटिलता के बोझ के कारण हँस नही पाये ।

"भगवान की इच्छा नही है तो आप इसका उपाय कर लीजिए ।" सर्वोदयीजी ने चुनौती दी, "समाज में विषमता सदा रही है । ईश्वर की प्रेरणा से मनुष्य के हृदय मे उत्पन्न होने वाली सद्भावना ही इस विषमता का उपाय करती है, समझे आप !"

कारमेड ने इनकार में सिर हिला दिया, "हरगिज़ नही, आपका अभिप्राय है कि ईश्वर समाज में विषमता उत्पन्न करता है और फिर

उस विषमता को दूर करने के लिये मनुष्य के हृदय में सद्भावना उत्पन्न करता है। यह अच्छा मजाक है। ईश्वर की प्रेरणा और ईश्वर के नाम पर पाये अधिकार से ही शोषक वर्ग ने, अपने स्वार्थ के लिये समाज में विषमता पैदा की है और श्रमिक वर्ग और स्त्रियों को अपने भोग और सेवा का साधन बनाया है। रूस में सर्व-साधारण जनता का भ्रम दूर हो जाने से ईश्वर की प्रेरणा मिट गई है इसलिये जनता को विषमता दूर करने का अवसर मिल गया है।"

मौजी ने उन्हें टोक कर विस्मय के स्वर में पूछ लिया, "कारमेड क्या कहते जा रहे है? क्या नाखून और होंठ रग कर, एक मकान की कीमत की साड़ी मे चालेकट की तरह लिपटी, और एक आदमी की उम्र भर की कमाई की कीमत की मोटर मे बैठ कर चलने वाली महिलाओ को भी आप शोषित कहेगे? उनसे बडा शोषक कौन होगा?"

"नही वह शोषक नही, शोषित ही है।" कामरेड ने आग्रह किया, "शोषण तो वह कर सकता है जिसके हाथ मे शक्ति हो। सम्पन्न लोगो के विनोद का खिलौना, यह बेचारी शोषण करेगी? इनसे खेलने वाले जिस तरह चाहते है, इन्हें रखते हैं। जलसे के समय अपना शौक पूरा करने के लिए आप बैंड बजाने वालों को कमाण्डर-इन-चीफ की वर्दी पहना दे तो वे बेचारे कमाण्डर-इन-चीफ नही बन जायेगे, रहेगे आपके शौक का साधन ही। ऐसे ही सम्पन्न श्रेणी की हाथ-पाव और मुँह रंग कर, मोटर पर सवारी करने वाली महिलाओ का अपना कोई व्यक्तित्व नही। वे 'किसी की श्रीमती जी' हैं। उनके श्रीमान की स्थिति के अनुसार ही उनका आदर है। यह आदर वास्तव में उनका नही, उनके श्रीमान के खिलौने का या उनके श्रीमान का ही है। सीधी बात है, आप बड़े साहब के कुत्ते से भी डरते है। वह आपको भौके तो भी उसे सहसा मार बैठने का साहस नही होता। जिस व्यक्ति का अपना कोई व्यक्तित्व नही, उससे अधिक शोषित कौन होगा? अगर यह श्रीमतियाँ अपनी इस स्थिति पर गर्व करती हैं तो यह इनकी मनुष्यत्वहीन, व्यक्तित्वहीन अत्यन्त गिरी हुई मानसिक अवस्था का परिणाम है।"

अपनी बात रही जाती देखकर मार्क्सवादी ने सर्वोदयी जी को सम्बोधन किया, "आप कहते है कि स्त्रियों के घर की चारदिवारी से बाहर निकल कर, रोजगार ढूंढ़ने से समाज का संकट और बेकारी बढ़ेगी ?"

"हाँ सो तो होगा ही" सर्वोदयी जी ने चारों ओर देखकर अपनी बात दोहरायी, "सब जानते है, ऐसा तो होगा ही !"

"हम कहते है ऐसा नही होगा।" मार्क्सवाद ने अपनी हथेली पर मुक्का मार कर अपनी वात पर बल दिया, "रूस में ऐसा नही हुआ और भारत में भी ऐसा नही होगा। मध्यम श्रेणी की स्त्रियाँ आज दिन समाज के लिये आवश्यक पदार्थों की पैदावार मे भाग नही लेती परन्तु वे पदार्थो का उपयोग या खर्च तो करती है। यदि वे कुछ उपयोगी काम करने लगेगी तो इससे समाज को हानि होगी या लाभ ?"

"परन्तु भाई काम है कहाँ ?" भद्रपुरुष ने प्रश्न किया, "योही लोग बेकार हो रहे है। एक हजार स्त्रियाँ क्लर्क बनने के लिये दफ्तरों की ओर भागेगी तो एक हजार क्लर्क बेकार हो जायंगे और क्लर्क इतने अधिक हो जायंगे तो उनकी तनख्वाह स्वयं कम हो जायगी। बाजार में चीजों की रसाई और जरूरत के हिसाब से ही तो चीजों के दाम पड़ते है।"

"आप अर्थशास्त्र की बात कर रहे है।" मार्क्सवादी बोले, "कि बाजार में किस पदार्थ की माँग कितनी है और वह पदार्थ कितना मिल सकता है, इस हिसाब से पदार्थ के दाम निश्चित होते है। पदार्थ की माँग और उसकी रसाई के हिसाव का प्रभाव भी दामों पर पड़ता है परन्तु दामो पर कोई दूसरी बातो का भी असर पड़ता है। किसी एक वस्तु की माँग सीमित हो सकती है परन्तु श्रम-शक्ति की माँग की सीमा नही है। क्योकि श्रम-शक्ति केवल एक ही वस्तु तो उत्पन्न नही करती। वह तो सभी पदार्थ उत्पन्न करती है। श्रम-शक्ति का दाम तब घटता है

जब मज़दूर अपना मुनाफाखोर के हाथ बेचता है। जिस समाज में पदार्थों को उपयोग के लिए पैदा किया जाता है और जिस समाज मे जनता के लिये सभी प्रकार के पदार्थ अधिक से अधिक उत्पन्न करने की जरूरत हो, वहाँ ऐसा नही होगा।" क्या आप समझते है कि समाज के सव-साधारण को जिन पदार्थो की जितनी आवश्यकता है, वह सब पूरी हो रही है, और अधिक पैदावार करने की जरूरत नही है ?"

स्वयं भद्रपुरुष ने ही ऊँचे स्वर मे विरोध किया, "कौन कहता है कि आवश्यक चीजे मिल रही है ? मकान नही, कपडा नही, खाना नही, दवाई नही, कुछ भी तो नही मिल रहा !"

"तो फिर समाज में कोई भी व्यक्ति बेकार क्यों रहे। और समाज की स्त्रियो के पैदावार में भाग लेने से, काम करने वालो की सख्या जरूरत से अधिक हो जाने का भय आपको कैसे हो सकता है।" मार्क्स-वादी ने पूछा और बोले, "समाज में काम और पैदावार करने वालों की संख्या जितनी अधिक होगी, पैदावार उतनी ही अधिक हो सकेगी, खरीद सकने की शक्ति भी उतनी ही बढेगी। उतना ही समाज का कल्याण होगा। यदि आप पैदावार को कुछ व्यक्तियो के मुनाफे का साधन बना दें और उनके मुनाफे के विचार से दाम बढ़ाने के लिये पैदा-वार रोक दे तो बात दूसरी है। मुनाफा कमाने के लिये श्रम-शक्ति का मूल्य (मजदूरी) कम रखा जाता है और मजदूरी कम रखने के लिये कुछ लोगों को बेकार रखना भी ज़रूरी हो जाता है।

"इसके अतिरिक्त", दूसरो को चुप देखकर मार्क्सवादी बोलते ही चले गये, "यह कौन न्याय है कि पुरुषों को कारोबार ढूँढ़ने मे असुविधा होगी इसलिये स्त्रियाँ पिंजरो मे बन्द रह कर, पुरुषो की मोहताज और गुलाम बनी रहे। समाज के पूर्ण विकास के लिए, समाज के आधे भाग स्त्री का सहयोग आवश्यक है। स्त्री की आर्थिक स्वतन्त्रता स्त्री का मानवी अधिकार है। आर्थिक स्वतन्त्रता के बिना स्वतन्त्रता का कुछ अर्थ नही, वह ढोग मात्र है। पूंजीवादी मनोवृत्ति स्त्री की आर्थिक स्वतन्त्रता का

विरोध करके, स्त्री को अपने भोग की वस्तु बनाये रखना चाहती है ”

अब की बार वैज्ञानिक मार्क्सवादी को सम्बोधन कर बोले, “आप बात करते हैं स्त्री के आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने की, परन्तु पूँजीवादी संस्कृति से प्रभावित पढ़ी-लिखी महिला की महत्वाकांक्षा आत्मनिर्भर होने की है ही नही । वह आत्म-निर्भरता की जिम्मेवारी नही चाहती । वह चाहती है, पुरुष से लाड़ और नाजबरदारी । वह चाहती है, मिल-मालिक या आई० ए० एस० पति । एम० ए० और एम० बी०, बी० एस० तक अपनी पढ़ाई पर रुपया फूँक कर वह चाहती है केवल बैरे पर हुक्म चलाना । उसका बी० ए०, एम० ए० उपयोगिता के लिये नही, केवल पति फँसाने का लेबल मात्र है । वह चाहती है, भीड़ मे उसके लिये राह छोड दीजिये, सभा मे उसे आगे कुर्सी दे दीजिये । वह चाहती है कागज में लिपटी बोतल की तरह, शरीर रेखाये दिखा कर समाज मे थिरकना । अपने निर्वाह के लिये कमाना वह अपने नारीत्व की बेकदरी समझती है । वह दफ्तर मे या मिल में काम करने से बेहतर मर जाना समझती है । उसकी पढाई का उपयोग यह है कि वह ठोड़ी पर उँगली रख कर विस्मय प्रकट कर सकती है—ओह् गॉड हाओ लवली ! यह है भद्रश्रेणी की महिला जो ‘महिला-आन्दोलन’ चलाती है । यदि नारी आन्दोलन से समाज का कुछ भला चाहते है, तो यह आन्दोलन उन स्त्रियों के हाथ मे होना चाहिये जो आर्थिक पराधीनता अनुभव करती है और संघर्ष द्वारा आत्म-निर्भरता मे विश्वास करती है ।”

इनके चुप होते ही कामरेड बोल उठे, “पूंजीवादी मनोवृत्ति स्त्री की आर्थिक स्वतन्त्रता का विरोध इसलिये करती है कि आर्थिक क्षेत्र में आकर स्त्री जीविका कमाने वाली, साधनहीन श्रेणी का अंग और सहायक बन कर, इस श्रेणी की शक्ति को बढ़ायेगी । स्त्री की आर्थिक स्वतन्त्रता समाजवादी व्यवस्था का अनिवार्य अंग है और स्त्री की आर्थिक स्वतन्त्रता समाजवाद की प्राप्ति और स्थापना में सहायक होगी । इसीलिये पूंजीवादी व्यवस्था, स्त्री की गुलामी या पर्दे के आधार पर जमायी

गयी प्रतिष्ठा की धारणा से, उसे कोमल और दयनीय बताकर, उसे आर्थिक संघर्ष से दूर रखना चाहती है। पूजीवादी व्यवस्था स्त्री को केवल मोहक बनाने के लिए, उसे नजाकत और नखरा सिखाने के लिये, अपने भोग और मनोरंजन के लिये, उसे चुलबुलेपन का अवसर देने के लिये 'कलात्मक' शिक्षा देने के लिए तैयार है परन्तु स्त्री की पराधीनता के बन्धन तोडकर उसका आत्म-निर्भर बन जाना, पूंजीवादी संस्कृति को स्वीकार नही। समाज को शोषण की व्यवस्था में रखने वाले सभी बन्धन पूंजीवादी व्यवस्था के रक्षक हैं। इनमे से किसी भी बन्धन का टूटना पूंजीवादी व्यवस्था को स्वीकार नही।"

मार्क्सवादी और कामरेड की बात स्वीकार करने के लिये विवश होकर महिला और श्रीमती जी ने उत्तर की आशा से सर्वोदयीजी की ओर देखा।

सर्वोदयीजी मुस्करा दिये और मधुर स्वर में बोले, "नारी के लिये तो सेवा का जो ऊँचा आदर्श बापू बता गये है, उसके सिवा नारी की मुक्ति कहाँ है? सेवा के मार्ग में ही नारी की मुक्ति है।"

"बहुत ठीक" मार्क्सवादी ऊँचे स्वर मे बोल उठे, "नारी सेवा का साधन मात्र बनना चाहती है तो उसके लिए बापू के चरणो में स्थान है। यदि वह आत्मनिर्भर, स्वतन्त्र मनुष्य बनकर पुरुष के कंधे के बराबर खड़ी होना चाहती है तो उसके लिये मार्क्सवाद का ही मार्ग है।"

४

राम-राज और मजदूर-राज की नैतिकता

अभी सवेर ही थी पर सर्वोदयीजी, मार्क्सवादी और इतिहासज्ञ क्लब में आ गये थे। कोई बहस आरम्भ न होने से तीनो उस दिन के अखबार के पन्ने बाँट कर पढ़ रहे थे।

मौजी और जिज्ञासु भी आ गये, "कहिये यह चुप्पी कैसी ?" पूछ कर वे भी दीवार से पीठ लगा एक ओर बैठ गये ?

जिज्ञासु ने पहले तो मार्क्सवादी की बगल से अखबार मे झाँका। शहर मे चलने वाली सब फिल्मो के नाम पढ़ गये। अखबार मे कोई उत्साह अनुभव न कर उन्होने दीवार से सिर टिका कर मौजी को सम्बोधन किया, "अजी क्या सन्नाटा खीचा हुआ है सब लोगो ने ! मौजी भाई, तुम्ही कुछ सुनाओ !"

"क्या सुनाये भाई ?" कुछ भारी आवाज़ में मौजी ने उत्तर दिया, "जुकाम से परेशान····" इनकी बात पूरी भी न हो पायी थी कि पड़ोस में एक 'पुरुषार्थी बन्धु' के नये खुले होटल से ग्रामोफोन चिल्ला उठा—

"आई बहार है, जिया बेकरार है,
आजा मेरे बालमा तेरा इंतज़ार है।"

पास-पड़ोस की अनेक छोटी-मोटी दुकानो के गाहकों को अपने यहाँ बटोर कर उनकी सेवा करने के लिये 'पुरुषार्थी बन्धु' ने बड़ी सी दुकान चाय-पानी और खाने-पीने की खोली है। गाहकों के मनोविनोद के

लिये और सड़क पर चलते लोगो को आकर्षित करने के लिये, वे ग्रामो-फोन पर लाउड स्पीकर लगा कर, फिल्मी गानो के नये-नये रिकार्ड बजाते रहते है।

"लो सुन लो, हमें परेशान करने की क्या जरूरत ?" मौजी ने सड़क से आते गीत के स्वर की ओर सकेत कर उत्तर दिया, "सुन लो, यह डिब्बे का गाना !"

"डिब्बे का गाना कैसा ?" ठोडी उठा कर सर्वोदयीजी ने जिज्ञासु से प्रश्न किया।

"अरे भाई जैसे डिब्बे का दूध होता है।" मौजी रूमाल से नाक पोछते हुये बोले, "गैया विलायत में और दूध आपके घर में ! गैया को वछड़ा दिखा कर पुचकारने की जरूरत नहीं। जब चाहा रात-बिरात डिब्बा खोल लिया। वैसे ही खुशामद की जरूरत नही। गाने वाली बम्बई-कलकत्ता में रहे; आपका जब जी चाहा, रिकार्ड लगा लिया।"

अपने हाथ का अखबार एक ओर रख कर मार्क्सवादी ने गम्भीरता से कहा, "भाई ग्रामोफोन और रेडियो से गरीब आदमियो का वड़ा भारी उपकार हो गया है। पहले गाना-मुजरा रईसों और दरबारियों की ही चीज थी। हम तुम चाहते कि कोई कलावंत हमारे लिये गा दे तो अपने बस की तो बात थी नही। अब गाने वाला चाहे एक गाने के सौ-पाँच सौ रुपये ले सकता है परन्तु आप चार पैसे का चाय का प्याला खरीदिये और गाना मुफ्त में सुनिये। यह है विज्ञान की बरकत कि आवाज को गले से, गीत को गाने वाले से, कला को कलाकार से अलग कर लिया।"

"लेकिन यह भी अमीरों के ही लिये है।" जिज्ञासु बोले, "गरीब आदमी बेचारा ग्रामोफोन कहाँ खरीद सकता है।"

इतिहासज्ञ ने भी हाथ का अखबार रख दिया और बोले, "गरीब आदमी ग्रामोफोन नहीं खरीद सकते लेकिन सड़क पर टहलते-टहलते गाना सुन सकते है। फर्ज कीजिये कि अकबर, शाहजहां का जमाना

होता । यह फिल्म में गाने वाली बीबी शाही महल में बन्द कर ली गयी होती । हम और आप इनका गाना सुन पाते ?"

"गाना गया भाड़ में ।" भद्रपुरुष आकर एक ओर बैठे ही थे, बोले, "रोटी तो पेट भर खाते थे सब लोग ।"

इतिहासज्ञ ने विस्मय प्रकट कर कहा, "कौन जाने; सब लोग भर पेट रोटी खाते थे या नही ? अकबर, शाहजहाँ जरूर मुर्ग-मुसल्लम खाते थे और शीराजी शराब भी हिमालय से लायी गयी बरफ में ठण्डी करके पीते थे ।"

"हां हा, सभी लोग पेट भर कर खाना खाते थे, दस-पाच को खिला कर खाते थे । अब तो राशन का जमाना है । तीन छटाक आटा और तीन छटांक चावल मिलता है भैया ! कोई क्या खाये और क्या खिलाये ।" भद्रपुरुष ने अपनी बात दोहरायी ।

सन्देह प्रकट करने के लिये सिर हिलाते हुये इतिहासज्ञ बोले, "हमें तो बहुत सन्देह है कि उस जमाने मे सब लोग पेट भर कर मानाचाहा खाते रहे हों और जरूरत भर कपडा पाते हों । सम्भव नही जान पडता ।'

"क्या अजीब बात कहते है आप ?" राष्ट्रीयजी ने अपने राष्ट्रीय-गौरव का अपमान अनुभव कर खिन्नता प्रकट की, "चार आने का मन भर तो अनाज बिकता था उस जमाने में, फिर भी लोग भूखे रहते होंगे ?"

"अनाज तो चार आने का मन भर मिलता था" मार्क्सवादी बीच में बोले, 'पर चार आने भी मिलते थे या नही, यह भी तो प्रश्न है । कहने को तो आजकल कागज के टुकड़ो (नोट) से सब कुछ खरीदा जा सकता है परन्तु वह कागज का टुकड़ा पा लेना ही तो बड़ी बात है बाबू जी !"

अब सर्वोदयीजी ने बोलना आवश्यक समझा, "आपका अभिप्राय है कि इस देश में पहले अधिक कंगाली थी ?"

"इस देश में क्या", इतिहासज्ञ ने हाथ फैलाकर उत्तर दिया, "अधिकांश जनता के लिये संसार भर में पहले कंगाली ही थी । अब

पैदावार के साधन अधिक हैं तो समृद्धि की सम्भावना भी अधिक है।''

''इसको आप समृद्धि कहते है !'' विस्मय से भवें ऊँची कर सर्वोदयीजी ने पूछा।

जिज्ञासु ने इनका समर्थन किया, ''इतिहासज्ञजी, यह तो आप नयी बात कह रहे है। सभी लोगों का विश्वास है कि अंग्रेजी राज्य के शोषण से पूर्व इस देश की अवस्था समृद्ध थी। आप बता रहे है कि देश और समृद्ध हो गया है। यह कैसे माना जा सकता है ?''

बहुत गहरी सास खीच कर इतिहासज्ञ आगे बढे, ''सुनिये, अंग्रेजी राज में भारत का बहुत शोषण हुआ है, इसमें तो सन्देह की गुंजाइश नही। यह भी ठीक है कि अंग्रेजों ने अपने व्यापारी स्वार्थ के लिये, तत्कालीन भारतीय उद्योग-धन्धों को बरबाद कर दिया, जिससे कंगाली बढ़ी परन्तु यह नही कहा जा सकता कि भारत में अंग्रेजी राज से पहले साधनहीन श्रेणी का शोषण नही था या सभी श्रेणियाँ समृद्ध थी।''

''अधिक से अधिक आवश्यकताओ का पूरा होना ही समृद्धि है। इस युग मे पहले युगों की अपेक्षा, बहुत अधिक लोगों की आवश्यकताये, पहले से बहुत अधिक पूरी होती है और मनुष्यों की बुद्धि तथा विचारों का भी विकास पहले से बहुत अधिक है।''

जिज्ञासु ने अपना प्रश्न दोहराया, ''आप कहते हैं, मनुष्य-समाज पहले से उन्नत और सुखी है।''

''पहले से तो निश्चय ही उन्नत और सुखी है।'' इतिहासज्ञ ने बल देकर उत्तर दिया, ''अपनी आवश्यकतायें पूरी कर सकने के अवसर की दृष्टि से, आज मध्यम श्रेणी का साधारण व्यक्ति उतना ही समृद्ध और सुखी है जितना किसी समय कोई राजा होता था। सर्व-साधारण पहले की अपेक्षा स्वतन्त्र भी अधिक है। हाँ, व्यक्तिगत निरंकुशता का अवसर आज बेशक नही है।''

''भाई इतना तो हम दावे से कह सकते हैं,'' मौजी जरा उचक कर बोले, ''अगर कोई आदमी जहाँगीर को बिजली की एक टार्च भेंट कर

देता तो जहाँगीर ने सौ-पचास गाँव बख्शीश में दे दिये होते और अगर कोई उन्हें मोटर दे देता, तो उन्होंने अपनी सल्तनत बक्श दी होती।" मौजी स्वयं ही जोर से कहकहा लगा कर हँस पड़े, "मोटर को वे जिन्न की करामात से कम क्या समझते; या भगवान की शक्ति का चमत्कार मान लेते।"

"वाह खूब कहा आपने" राष्ट्रीय ने समर्थन किया, "जहाँगीर पियक्कड़ ही तो थे।"

मौजी अपने स्थान पर और उचक गये, "पियक्कड़ ! आप गौर तो कीजिये, न आग, न तेल और रोशनी ! इससे बडा जादू या चमत्कार क्या होता उस जमाने मे ? जनाब, टार्च दिखाने वाले को तो उस जमाने के लोग फरिश्ता या जिन्न समझ लेते।" मौजी कहकहा लगाकर हँस पडे।

उस कहकहे की उपेक्षाकर इतिहासज्ञ ने अपनी बात जारी रखी, "आपको इस बात पर विस्मय होता है। मामूली बात लीजिये, पिछले समय मे यदि कही पत्र भेजना होता था तो केवल कोई राजा ही चार-पाँच घुड़सवारो को इकट्ठा कर अपना पत्र भेज सकता था। आज आप तीन पैसे का पोस्ट कार्ड, प्रतिदिन दो हजार मील दूर तक भेज सकते है। यह सुविधा शहनशाह अकबर को भी न थी। आज अधिकाश शहरों में आपके घर के भीतर हर समय जल बहता रहता है। नलकों का चलन होने से पहले, एक घर मे इतनी इफरात से खर्च करने के लिये पानी लाया जाता तो दस-दस कहार लगते। जितने जल से आज आप नहाते हैं; कुयें से पानी खीच कर नहाने वाला कभी नहीं नहा सकता। इतने जल से नहाने के लिये सेठ को बीस कहार रखने पड़ते। सब आदमी न सही, हजारों आदमी आजकल दिन-रात पखो के नीचे बैठते है। वाजिदअलीशाह के जमाने में यदि सारा हिन्दुस्तान पंखे खीचने और डुलाने के काम में जोत दिया जाता, तो भी इतने आदमियो को पंखा नही मिल सकता था। उस जमाने में जहांगीर तंजेब का एक अँगरखा

पहनते थे और उनकी मलका मुअज्जमा मलमल की साड़ी। दो-तीन गॉव की कातने वालियाँ और जुलाहे इस कपड़े की कताई-बुनाई में लगते होगे तो जाकर साल-छः मास मे वह पोशाक बनती होगी। आज इक्का चलाने वाले तक मशीन से बने तजेब के कुर्ते पहनते है और अपनी घरवाली को मलमल की साड़ी पहनाते है। उस जमाने के बीसियो शहनशाहो में एक जहाँगीर काश्मीर देख आये। आज हर साल दसियो हजार आदमी काश्मीर, शिमले की हवा खा आते है। जहागीर काश्मीर थे तो दिल्ली-आगरा का हाल जानने के लिये उनका दिल धड़कता रहता था। आज लखनऊ-दिल्ली के गुड़-तेल बेचने वाले भी अपने घर बैठ कर, कलकत्ता-बम्बई से फोन पर भाव, खरीद-फरोख्त करते रहते है। अरे भाई, सीधी बात है, मनुष्य विज्ञान के विकास से और यंत्रो की सहायता से प्रकृति पर विजय पा रहा है। अपनी आवश्यकतायें आज वह प्रकृति से पहले की अपेक्षा अधिक सुविधा से पूरी कर सकता है। जो बाते पहले राजाओं के लिये नियामते थी आज सर्व-साधारण के लिये सुलभ है। पहले मनुष्य पैदावार व्यक्तिगत रूप से करता था। उसकी पैदावार की शक्ति कम थी। आज पैदावार सामूहिक और सामाजिक ढंग से होती है। पैदावार की शक्ति सौगुना बढ़ गई है....।"

"परन्तु यह हम कैसे मान लें कि उस युग मे जब इतनी सस्ती थी, समाज के अधिकाश लोग भूखे-नंगे रहते थे?" जिज्ञासु ने अपने प्रश्न पर जोर दिया।

"यह आपको इसलिये मानना पडेगा कि उस समय पैदावार की शक्ति ही मनुष्य-समाज में कम थी। प्रमाण चाहते है आप!" इतिहासज्ञ ने पूछा और बोले, "उस युग मे, जब यंत्रो का आविष्कार नही हुआ था, एक समृद्ध परिवार के लिये, जल भरने के लिये दस कहारो की जरूरत थी या नहीं? परिवार के लोगों की पालकियाँ उठाने के लिये दस आदमियों की जरूरत थी या नही? उन्हें पंखा करने के लिए कुछ आदमियों की जरूरत थी या नही? और समृद्ध परिवारो को इन सब कामों के

लिये आदमी इफ़रात से मिल जाते थे। स्पष्ट है कि भूमि या पैदावार के साधनो की मालिक श्रेणी प्रजा की बहुत बडी संख्या को ऐसी अवस्था में विवश रखती होगी कि यह लोग अपना पेट भरने के लिये, मालिको की किसी भी सेवा के लिये इच्छुक रहे। स्वतन्त्रता से पेट भरने का अवसर हाथ में रहने पर, कोई मोहताजी करना पसन्द क्यो करेगा? परिस्थितियो से विवश हुये बिना दूसरे की सेवा करने के लिये कोई क्यो तैयार होगा? उस समय ऐसे सेवकों की कमी न होगी, इस बात का प्रमाण है कि इस श्रेणी के लोग अपना पेट भरने के लिये समृद्ध श्रेणी के या पैदावार के साधनो को स्वामी श्रेणी के बस मे थे, उनकी दया पर निर्भर करते थे। ज्यों-ज्यो यत्रों का विकास होता गया, पैदावार तथा आवश्यकता पूर्ति के लिये कम आदमियो की आवश्यकता होने लगी, साधनो की मालिक श्रेणी अपने आधीन श्रेणी के पालन की जिम्मेदारी अपने कधो से हटाने लगी और मेहनत-मजदूरी करने वाली श्रेणी पहले की अपेक्षा स्वतंत्र होने लगी। यहाँ तक कि दासता की प्रथा, जो एक समय ईश्वर की आज्ञा और धर्म का अंग समझी जाती थी, पाप समझी जाने लगी। सब मनुष्यों में समानता की धारणा पैदा हो गयी। यह समाज के जीवन का ढग, अर्थात् आवश्यक वस्तुओ की पैदावार का ढग, यत्रो के विकास के कारण बदल जाने से ही सम्भव हो सका।'

सर्वोदयीजी इतिहासज्ञ की इस लम्बी व्याख्या को अस्वीकार करने के लिये सिर हिलाकर बोले, "आप कहते है, यंत्रो के विकास ने मनुष्यो को स्वतन्त्र कर दिया है, इससे मनुष्य उन्नत हो गया है यह बिलकुल गलत है।" उन्होने अपने हाथ की उँगलियों को समेट कर बिलकुल गलत का संकेत करते हुए बहुत जोर से कहा, "बिलकुल गलत। आप कहते हैं, मनुष्य प्रकृति को जीत रहा है। यह बात भी गलत है। यंत्रो के विकास ने मनुष्य को प्रकृति का दास बना दिया है। मनुष्य पशु हो गया है। इस युग मे यंत्रों के ही प्रभाव से मनुष्यों में असत्य और हिसा पैदा

हो गयी है। मनुष्य का घोर नैतिक पतन हो गया है। इसके विपरीत, उस युग में हमारे ऋषियों ने सब मनुष्यों को एक समान बताया था। आप स्वामी और दास की बात पर इतना तूमार बाँधते है, परन्तु वह तो प्रेम का सम्बन्ध था, पिता पुत्र का सम्बन्ध था। तब आप का यह श्रेणी संघर्ष कहाँ था जो आज अंसार को अपनी आग में जलाये दे रहा है ?"

राष्ट्रीयजी ने भी उनका समर्थन किया, "हाँ हमारे ऋषियो ने तो मनुष्य मात्र को एक समान माना है। यह कोई आपके पश्चिमी समाज-वाद की खूबी नही है। पश्चिमी यांत्रिक-सभ्यता ने हमे निर्बल और गुलाम ही बनाया है। प्राचीनकाल मे हम कितने उन्नत थे।"

वैज्ञानिक जोर से हँस दिये और बोले, "यन्त्रो ने आपको किस तरह निर्बल बना दिया साहब ! क्या इसलिए कि पहले जंगली जानवर मनुष्यो तो फाडकर खा जाते थे, अब नही खा सकते। क्या इसलिये कि पहले नदी पार करने मे आप डूब जाते थे अब सात समुद्र लाँघ जाते है। क्या इसलिये कि आप अब आकाश मे उड सकते है। क्या इसलिये कि पहले कोई रोग होने पर ईश्वर की इच्छा मान कर विवश हो जाते थे और अब रोगो का इलाज हो जाता है। रही आपके ऋषियो की बात कि उन्होने सब मनुष्यो को एक समान बताया था—उन्होने ब्राह्मण का धर्म मार्ग बताना, क्षत्रिय का धर्म शासन करना और शूद्र और दास का धर्म सेवा करना ही तो बताया था। आप बताइये कि व्यवहार मे क्या होता था ? दास और स्वामी को, शासन और सेवा करने वाले को आप एक समान मान सकते है ! पूर्वजों ने मनुष्यो की समानता का उपदेश तो जरूर दिया था परन्तु उस समय दासो और सेवको को मनुष्य ही नही माना जाता था।"

सर्वोदयीजी ने कुछ कहने के लिये मुँह खोला ही था कि कामरेड उनसे पहले ही बोल पड़े, "रही बात स्वामी-दास के पिता-पुत्र के संबंध के पाखण्ड की, सो भैया जो आदमी मुर्गियों को खाने के लिये पालता है

तो कुत्ते-बिल्ली से मुर्गी की रक्षा करता ही है। अपनी सामर्थ्य और समझ-बूझ से उन्हे अच्छा दाना भी देता है कि खूब मोटी हो जायें। रोग होने पर उनका इलाज भी करता है। कभी बेटा कह कर भी पुचकारता है लेकिन मुर्गियो का उपकार करने के लिये, सत्य और अहिंसा से मुर्गियो की उन्नति करने के लिये कोई मुर्गी पालता हो ऐसा अभी तक देखा-सुना नही गया। ऐसे ही दासों को बेटा बना कर खिलाने-पिलाने के लिये ही रक्खा जाता हो, यह समझ मे नही आ सकता। दासता की प्रथा के अन्त से मनुष्य-समाज का पतन हो गया है, जनता का अपने शासन के लिये राय देने का अधिकार माँगना मानवता का पतन है और प्रजा का बाप बनकर, राजा के ईश्वरीय अधिकार से प्रजा पर निरंकुश शासन करना, समाज के लिये कल्याणकारी था तो हम इस धोखे मे आने से रहे।"

कामरेड की इस उग्रता का उत्तर सर्वोदयीजी ने शात और आत्म-तुष्ट मुस्कराहट मे दिया और बोले, "धोखा, मनुष्य को धोखा कौन दे सकता है? मनुष्य स्वयं ही धोखे मे पडता है। यह जडता की पूजा, समाज का यंत्रों का दास बन जाना, यंत्रो के लिये मनुष्य को बलिदान कर देना ही धोखा है। आवश्यकताओ को बढाना, उनकी पूर्ति के लिये पागल हो जाना, अधिकारो का लोभ, शक्ति प्राप्त करने की इच्छा, यह सब हिंसा की प्रवृत्ति है जो आवश्यकताओं को बढाने, उनके लिये संघर्ष करने और यंत्रों की दासता से पैदा होती है। इससे मनुष्य की उन्नति नही, पतन ही हो रहा है।"

मार्क्सवादी सर्वोदयीजी को सम्बोधन कर बोले, 'आपके विचार में आवश्यकता का न होना, यंत्रों से दूर रहना यदि शक्ति, समृद्धि और मनुष्यता के विकास का लक्षण है तो आप पशुता की ही पूजा करना चाहते है! पशुओं की आवश्यकतायें बहुत कम होती है और यंत्रों का उपयोग तो वे करते ही नहीं!"

सर्वोदयीजी इस तर्क से परास्त होकर झेंपे नहीं, बोले, "अवश्य,

अवश्य ! हिंसा और लोभ में फँसे मनुष्यो से पशु बहुत अच्छे हैं। वे आपस में एक दूसरे की धाड़-फाड़ तो नही करते। वे वासना के दास तो नहीं।"

मार्क्सवादी ने आगे बढ़ कर पूछा, "कौन कहता है पशुओं में हिंसा नही या लोभ नही ? पशु घास के एक तिनके के लिये लड़ मरते है, एक दूसरे को फाड़ कर खा जाते है। पशु संयम से अपने आप को वश नही करता। वह विवश होता है। पशु संतोष नही करता, पशु असमर्थ होता है। समझे आप ! आप किस पशु की सहन-शीलता और संतोष की प्रशंसा करते है और उसका अनुकरण करने की शिक्षा मनुष्यो को देते है ? क्या हम शेर, बाघ, भेडिये और बाज का अनुकरण करें ? आप चाहते हैं कि सर्व-साधारण जनता गाय, बैल, गधे और कुत्ते का अनुकरण करे इसलिये कि वे आपके वश मे रहते है। सर्व-साधारण जनता की समृद्ध होने की इच्छा और अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के यत्न की निन्दा, शासक श्रेणी के गुरु लोग इसीलिये करते है कि सर्व-साधारण जनता, समृद्धि को उनसे बँटाने न लगे। उनके बंधन से मुक्त होने की चेष्टा न करे ? स्वतन्त्रता का अर्थ है, अपनी इच्छाओ और आवश्यकताओ को पूर्ण करने का स्वतन्त्र अवसर, वैज्ञानिक उन्नति और यंत्रो का उपयोग, उत्पादन के काम को सामूहिक रूप देकर, श्रमिक जनता को मालिक के मुकाबले मे संगठित होने का अवसर देता है। इससे श्रमिक वर्ग की शक्ति मालिक श्रेणी से बढ जाती है। पशुता की, शान्ति और संतोष की प्रशंसा करके, यंत्रो के उपयोग मे समाज के समृद्ध होने की चेष्टा की निन्दा करना, सर्वसाधारण को पशु के संतोष का अनुकरण करने की शिक्षा देना, शासक श्रेणी की धूर्तता है। यह श्रेणी मनुष्यता और शासन का अधिकार अपने हाथ में रखना चाहती है और सर्व-साधारण को विवश पशु बनाये रखना चाहती है। यंत्रो का उपयोग उत्पादन के काम में मनुष्य को प्रकृति पर विजय पाने योग्य बना देता है। यंत्रों का उपयोग ही मनुष्यता का लक्षण है, यंत्रों

का विकास ही मनुष्य की उन्नति है। आप मालिक वर्ग के स्वार्थ की रक्षा के लिये यंत्रों के उपयोग की निन्दा करते है, मनुष्य की उन्नति का विरोध करते है। आप चाहते है सर्व-साधारण जनता यंत्रों पर अश्रद्धा कर उन्हे शासक श्रेणी के हाथ मे रहने दे और अपना संतोष अपनी आवश्यकताओ को घटा कर करे।"

सर्वोदयीजी को कामरेड की कड़ी भाषा अच्छी नही लगी। उँगली उठाकर उँचे स्वर मे उन्होने विरोध किया, "समाजवादी लोग स्वयं जनता को धोखा देते हैं, इसीलिये दूसरो को धोखेबाज कह कर गाली देना चाहते है। समाजवाद का सबसे बडा धाखा तो यह है कि सब लोग स्वतन्त्र और सुखी हो जायंगे। बापू ने तो स्पष्ट कहा है—'अधिकांश को तो गरीब ही रहना है इसलिये समाज मे समानता लाने के लिये सभी को गरीबी की जिन्दगी बितानी चाहिये।' बापू ने तो भूमि और कारोबार के मालिको को कहा है कि तुम लोग अपनी सम्पत्ति, धन, दौलत को अपना माल मत समझो। तुम केवल इन चीजो के संरक्षक हो, धन सब जनता का है। बापू पर श्रेणी पक्षपात का दोष लगाने मे बड़ा अन्याय क्या होगा? वह तो दरिद्रनारायण का पुजारी था, सम्पत्ति का नही। उसने अपनी इच्छा से गरीबी का जीवन बिताया क्योंकि वह दरिद्रता का उपासक था।"

"यही तो सबसे बड़ा धोखा है।" कामरेड फूट पड़े, "गाधी जी अपनी इच्छा से गरीबी मे रहे, यह उनका शौक था। शौक से गरीबी में रहने से गरीबी का दुख अनुभव नही हो सकता। यह कहना भी गलत है कि गाधी जी गरीबी में रहे। उनकी कौन आवश्यकता अपूर्ण रहती थी। देश की पूंजीपति श्रेणी के वकील होने की हैसियत से करोड़ों रुपये और सब साधन उनके हाथ में रहते थे। बताइये, गांधी जी के गरीबी में रहने से गरीबो को क्या लाभ हुआ? मुझे बीमार देखकर यदि आप भी बीमारी समेट लें तो मेरी क्या सहायता होगी? इसका परिणाम यही होगा कि मै भी बीमारी के इलाज की आशा न

करूँ ! सोचूं कि इतना बड़ा आदमी अपनी इच्छा से बीमार हो गया है, तो मेरे बीमार होने में क्या अन्याय है ? मैं संतोष कर लूं। गाधी जी ने जो बात की, अपनी श्रेणी अर्थात मालिक श्रेणी के लाभ की ही की। उनकी नैतिकता का आधार ही मालिक श्रेणी के अधिकार की रक्षा था। इसी कारण मालिक श्रेणी ने गाधी जी के लिये वे सब साधन प्रस्तुत किये, जिनसे वे सर्व-साधारण जनता को अपना अनुगामी बना सकते थे।

जब गांधी जी ने देखा कि जनता को साम्यवाद और कम्युनिज्म की ओर आकर्षण हो रहा है, तो उन्होने अपने आप को सबसे बड़ा साम्यवादी और कम्युनिस्ट एलान कर दिया कि कम्युनिज्म ही चाहते हो, तो भी मेरी ही बात मानो। गॉधी जी ने जमीदारो और पूंजीपतियो को अपनी इच्छा से सारे देश की सम्पत्ति के संरक्षक बन जाने का अधिकार दे दिया। यह सरासर जनता की आँखों में धूल झोकने की कोशिश है कि पैदावार के साधनो का स्वामित्व जमीदारो और पूंजीपतियों के हाथ मे रहते हुये भी जनता शोषण से बच सकती है। अब तक शोषक लोग शोषितों को शस्त्र की शक्ति से वश में रखते आये है। इतिहास इस बात का साक्षी है। परन्तु समाज मे आ गये आर्थिक परिवर्तनो से पैदावार करने वाली शोषित श्रेणी का महत्व और शक्ति समाज मे बढ़ती जा रही है। शोषित श्रेणी को अब शस्त्रों की शक्ति से दबाये रखना सम्भव नही है इसलिये गॉधीवाद मालिक श्रेणी को शोषितो का बापू बना कर, पैदावार के साधनों को अपने हाथ में रखने का नैतिक अधिकार उन्हें देना चाहता है और इसे मालिक श्रेणी का त्याग और सेवा-भाव बताता है !"

"गाधीवाद है क्या ?" मार्क्सवादी बीच में बोल उठे, "ईश्वर की प्रेरणा और धर्म की दुहाई देकर, मालिक श्रेणी के अधिकारो की रक्षा का यत्न ही गांधीवाद है। यंत्रों के विकास का विरोध गाधी जी ने इसलिये किया कि औद्योगीकरण से सर्वहारा मजदूर वर्ग की संख्या बढ़ती

है, उन्हे संगठित होने का अवसर मिलता है, उनमें अपनी श्रेणी के हित की चेतना पैदा होती है। यह बात मालिक श्रेणी के हित के विरुद्ध है। गांधी जी मालिक श्रेणी के हित और उनके अधिकार की रक्षा के लिये मानव-समाज के विकास को रोकने के लिये तैयार थे। यंत्रो के विकास के अभाव मे, जनता में अधिकांश को भूखा और नंगा रखने के लिये वे तैयार थे। इसीलिये यह सबसे बडा प्रपच था कि अधिकांश को तो गरीब ही रहना है, सब लोग गरीबी में रहे। जब मनुष्य समाज के पास, औद्योगिक विकास द्वारा सम्पूर्ण समाज की आवश्यकताये पूर्ण करने के साधन है, तो सब लोग गरीब क्यों रहें ?

"आप देखते है, जिन देशो मे यात्रिक विकास हुआ है, वहाँ के सर्व-साधारण लोगो की अवस्था उन देशों के लोगो से कही अधिक अच्छी है, जहाँ यात्रिक विकास नही हुआ। हम स्वयं देखते है कि यंत्रों के विकास से हमारे देश मे भी अनेक वस्तुये, जो पहले सर्व-साधारण के लिये दुर्लभ थी, सुलभ हो गयी हैं। उदाहरणतः आवश्यक जल, रात के समय रोशनी, यात्रा के साधन, औषधियाँ और कपडा भी पहले की अपेक्षा अब कही अधिक मात्रा मे मिल सकता है। औद्योगिक ढंग से की जाने वाली पैदावार आवश्यकतानुसार बढायी जा सकती है। पूँजी-वादी व्यवस्था में मालिक का मुनाफा पैदावार की मात्रा निश्चित करता है। यदि पैदावार का उद्देश्य जनता की आवश्यकतायें पूरी करना ही हो तो पैदावार बहुत बढ़ जायगी। गांधो जी का उपदेश—'अधिकांश को तो गरीब ही रहना है' तब गलत हो जायगा लेकिन गांधीवाद जनता की आवश्यकता पूर्ति नही चाहता। वह चाहता है, मालिक के मुनाफे के अधिकार की रक्षा। वह मालिक को उपदेश देता है कि अपने मिल्कियत के अधिकार की रक्षा के लिये कुर्बानी करो, गरीबी से रहो। गरीबो में अपने उदाहरण से सुख और समृद्धि से रहने की इच्छा न पैदा होने दो।"

सर्वोदयीजी फिर बोले, "यह आप के मन में यंत्रों के विकास और

पश्चिमी संस्कृति और नैतिकता के प्रभाव से पैदा हुई हिंसा-वृत्ति का परिणाम है कि आप मालिक लोगो में कोई शुभ-कामना मानने के लिये तैयार ही नही । भूमि और कारोबार क मालिक, ईश्वर के विधान से हमारे आर्थिक संगठन के संरक्षक बन कर पैदा हुये है । उनका कर्तव्य है कि अपने लिये निर्धारित कार्य को पूरा करें । हमारी वर्ण-व्यवस्था एक आर्थिक संगठन है । आप यह कैसे कह सकते है कि मालिक शोषण करने या मुनाफा कमाने के लिये ही कारोबार करते है । हमारे यहाँ तो जनक जैसे राजा त्याग का आदर्श कायम कर गये है । वे केवल दान और प्रजा पालन के लिये ही धन संचय करते थे । हमारी सस्कृति में धन और जड की पूजा का आदर्श रहा ही नही । हमने इसे माया और भ्रम ही समझा है । जैसे मजदूर किसान अपनी जीविका के लिये काई काम करता है, उसी प्रकार उद्योग-धन्धे चलाने वाला कारोबारी आदमी भी अपना कर्त्तव्य पूरा करता है । उसे भी अपना काम करने की उतनी ही नैतिक और कानूनी स्वतन्त्रता होनी चाहिये जितनी कि किसान मजदूर को । प्रश्न तो नैतिकता, आदर्श और संस्कृति का है । हमें अपना आदर्श जडवाद, सांसारिक माया के लिये सघर्ष करने वाला रावणराज्य नही बनाना । हमारा आदर्श शाश्वत सत्य, अहिंसा का राम-राज्य है जो जीवन की पूर्णता, मृत्यु के बाद उस लोक मे भगवान की प्राप्ति मे देखता है ।''

वैज्ञानिक बोले, ''सर्वोदयीजी मृत्यु के पश्चात दूसरा लोक हो या न भी हो । आप भी उस लोक को देख कर नही आये है । हम अपना आदर्श उस लोक की प्राप्ति के बजाय पहले इस लोक मे ही सफलता और सामर्थ्य क्यों न समझें !''

''परन्तु इस लोक को भी तो आप नैतिकता, सत्य और अहिंसा के आदर्श से गिर कर नही पा सकते'' सर्वोदय जी ने चेतावनी दी, ''उसके बिना तो समाज में अव्यवस्था और हिंसा ही हिंसा हो जायगी ।''

''नैतिकता के हम भी कायल है ।' मार्क्सवादी ने अपने सीने पर

हाथ रख कर स्वीकार किया, "परन्तु नैतिकता है क्या ? नैतिकता है समाज की परिस्थितियो के अनुकूल ऐसे नियम और व्यवस्था, जो पूरे समाज को जीवित रहने का अवसर दे सके और सभी व्यक्तियो का विकास के लिये अधिक से अधिक और समान अवसर दे सके।"

कुछ देर पहले शुद्धसाहित्यिक भी आ पहुंचे थे। वे मार्क्सवादी की नैतिकता की व्याख्या के प्रति विरोध मे सिर हिलाकर बोले, "नैतिकता और जीवन के आदर्श को आप समाज की आर्थिक परिस्थितियो से नही बाँध सकते। समाज की परिस्थितियाँ बदलने वाली चीज है परन्तु नैतिकता और जीवन का आदर्श एक स्थिर, शाश्वत वस्तु है जिससे व्यक्ति और समाज सभी तरह की परिस्थितियो मे प्रेरणा ग्रहण करता है। वह मनुष्य की अन्तर चेतना से उत्पन्न होती है।' नैतिकता और सत्य को आप नित्य नही बदल सकते।"

"नित्य तो नही परन्तु समाज की परिस्थितियाँ बदलने पर नैतिकता, सत्य और अहिंसा की धारणा भी बदलती रही है और समाज के भौतिक साधनो, परिस्थितियो और आर्थिक सम्बन्धो में परिवर्तन आने पर नैतिकता को निश्चय ही बदलना चाहिये" मार्क्सवादी ने एक हाथ का घूसा दूसरे हाथ की हथेली पर मार कर घोषणा की, "नैतिकता तथा सत्य और अहिंसा के सम्बन्ध मे सभी श्रेणियो और समाजो की धारणा अपने ज्ञान, विश्वास और अपने हितो की रक्षा के आधार पर होती है। हमारे विचार और हमारी धारणाये हमारे अस्तित्व की स्थिति से भिन्न और स्वतन्त्र नही हो सकते। हमारा ज्ञान बढने और जीवन की परिस्थितियाँ बदलने पर हमारे विचार और नैतिकता कैसे नही बदलेगी।"

"बस यही तो भौतिकवादी मार्क्सवादियो की सबसे बड़ी भूल है।" सर्वोदयीजी ने उदारता से मुस्करा कर सुझाया। अपना हाथ फैलाकर वे बोले, "मेरे भाई, तुम लोग नैतिकता, न्याय और आचार को अपने भौतिक ज्ञान और आर्थिक विचारो से निश्चित करते हो, जो पल-पल

पर बदलते है।" उन्होंने चुटकी बजाकर भौतिक परिस्थितियो की क्षणिकता का संकेत किया और बोले, "भौतिकता है क्या? केवल अपना स्वार्थ! इसलिये आपकी सत्य और न्याय की धारणा सदा सीमित रहेगी। आप व्यापक और स्थायी सत्य तक कभी पहुँच नही सकते। व्यापक और शाश्वत सत्य परमार्थ और अहिंसा के आधार पर ही पाया जा सकता है। उसका मूल है सदा एक रस ईश्वर की प्रेरणा।"

"ईश्वर को आप बीच मे न घसीटे तो अच्छा हो!" मार्क्सवादी ने हाथ उठाकर चेतावनी दी, "कारण यह कि आप कहेंगे कि आपका मत ईश्वर की आज्ञा है और हम ईश्वर से पूछ न पायेगे कि उनकी आज्ञा क्या है? न्याय का यह कायदा है कि गवाही ऐसी होनी चाहिये जिसकी प्रमाणिकता की परख हो सके।

जिज्ञासु, भद्रपुरुष और शुद्धसाहित्यिक के होठों पर मुस्कराहट देखकर कामरेड झट से बोल उठे, "यह तो शोषकों का पुराना ढोंग है कि जिस बात के लिये तर्क न हो उसके लिये अज्ञेय ईश्वर का भय दिखा दिया जाय। गांधी जी क्या करते थे? जिस बात को तर्क से साबित नहीं कर सके, कह दिया—मुझे ईश्वर की ऐसी ही प्रेरणा है। जिस बात के लिये दलील नही दे सके, उसे मनवाने के लिये उपवास कर बैठे। गांधी जी ईश्वर की प्रेरणा से हिन्दू-मुस्लिम दंगों के विरोध में उपवास करते रहे और ईश्वर की ऐसी इच्छा हुई कि दंगे बढ़ते-बढते यह नौबत आयी कि देश हिन्दुस्तान, पाकिस्तान में बँट गया। जिन्ना कहते रहे कि अल्लाह का हुक्म है, पाकिस्तान बनेगा। हुक्म चल गया अंग्रेज का।"

"देखिये साहब।" इतिहासज्ञ गम्भीरता से बोले, "हमारी समस्या आर्थिक और राजनैतिक है। इसमें ईश्वर और मजहब को लाना ठीक नहीं। हमें मजदूर-किसान मात्र को एक उद्देश्य और एक कार्यक्रम के लिये एक साथ लेकर चलना है। हम संसार भर के मेहनतकशों की एकता और उनके एक उद्देश्य मे विश्वास रखते हैं। ईश्वर और मजहब

करा देते है झगड़ा क्योंकि इस विषय में लोगों की आस्था और कल्पना भिन्न-भिन्न और परस्पर-विरोधी है। आप ही सोचिये, अग्रेज सरकार के विरुद्ध इस देश की जनता की लड़ाई साझी थी, जनता की आर्थिक और राजनैतिक माँगें साझी थी। पहले तो अंग्रेजो ने हिन्दुओ और मुसलमानों में पक्षपात के टुकड़े बाँट कर उन्हें लडाने की कोशिश की। फिर गांधी जी ने देश की जनता की आर्थिक और राजनैतिक मांगों को धार्मिक और आध्यात्मिक रूप देकर मजहब को बीच में ला खड़ा किया। गांधीजी ने कहा, राजनीति को ईश्वर विश्वास और मजहब के आधार पर चलाओ। मजहब और ईश्वर विश्वास हिन्दू, मुसलमान का अलग-अलग और परस्पर-विरोधी था। परिणाम यह हुआ कि जनता का साझा मोर्चा मजहबी टुकड़ों मे बँट गया। गाधी जी ने हिन्दू आदर्श पर रामराज की पुकार, हिन्दुओ को बहलाने के लिये उठाई तो दूसरी ओर से इस्लामी सल्तनत और पाकिस्तान की पुकार उठी !"

"यह क्या, आप क्या कह रहे है ?" उत्तेजना मे अपने आसन की मुद्रा बदल कर सर्वोदयीजी ने पुकारा, "आपका मतलब है कि बापू ने हिन्दू-मुसलमानों को लडाया ?"

इतिहासज्ञ सर्वोदयीजी की उत्तेजना से परास्त नही हुये और बोले, "हमने कहा न कि इस देश की जनता की आर्थिक और राजनैतिक मांगें साझी होने पर भी साम्प्रादायिक विश्वास के नाते, जनता के दो भागो में परम्परा-गत विरोध चला आता है। राजनैतिक और आर्थिक माँगों को साम्प्रदायिकता को रंग देने का परिणाम और क्या हो सकता था ? इस पर गाधी जी बहुत जोर देकर यह भी कहते थे कि मैं हिन्दू पहले हूँ और हिन्दुस्तानी बाद में। उन्होंने यह भी कहा कि मेरे लिये अपनी आत्मा की मुक्ति का महत्व देश की मुक्ति से अधिक है। गांधी जी ने हिन्दूपन का एलान किया तो मुहम्मद अली क्या कम थे ? उन्होने एलान किया— 'मेरे लिये सबसे पहले इस्लाम है। अदना से अदना मुसलमान मेरी नजर में गांधी से अधिक पवित्र है।' हो गयी लड़ाई शुरू। आप ही बताइये,

मुसलमान हिन्दुत्व के आदर्श को और हिन्दुओ के मुक्ति के आदर्श को पूरा करने के लिये काग्रेस के पीछे कैसे लगे रहते ?

"काग्रेस एक राजनैतिक संस्था थी । उसे हिन्दुत्व और साम्प्रदायिकता का रंग गाधी जी ने दिया । मुसलमानो ने यह अनुभव किया कि काग्रेस हिन्दू संस्था है, काग्रेस की स्वतंत्रता का आदर्श हिन्दू-राज का आदर्श है और वे काग्रेस से निकल भागे । काग्रेस वास्तव मे हिन्दुओ की ही संस्था रह गयी । चुसलमानो ने काग्रेस का विरोध करना और अपनी अलग, हिन्दू-विरोधी आजादी का आन्दोलन चलाना आरम्भ कर दिया, जिसका परिणाम हुआ देश का बटवारा । गाधी जी के हरिजन उद्धार आन्दोलन का भी यही प्रभाव हुआ । दलित जातियो की वास्तविक समस्या है उनकी आर्थिक पराधीनता । गाधी जी ने दलित जातियो की आर्थिक समस्या को नही उठाया; उठाया उनके मंदिर प्रवेश और उन्हे कुओं पर चढाने की समस्या को । हरिजन कुछ मन्दिरों मे गये या न गये, इससे उनका क्या भला हुआ ? परन्तु यह अवश्य हुआ कि कट्टर मुसलिम जनता ने समझ लिया कि काग्रेस हिन्दू साम्प्रदायिक सगठन है और उसका विरोध करने के लिये तब 'लोग' का आन्दोलन उठ खड़ा हुआ । परिणाम हुआ, हिन्दू-मुसलिम विरोध की बढ़ती है ।"

सब लोगो को इतिहासज्ञ की बात ध्यान और विस्मय से सुनते देखकर सर्वोदयीजी ने उत्तेजित स्वर मे पुकारा, "बापू ने साम्प्रदायिक विरोध बढ़ाया; यह आप कैसे कह सकते है ? बापू ने तो सम्प्रदायिक दंगे मिटाने के लिये अपनी जान की बाजी लगा दी । क्या आप देहली की दीवार के समीप सम्प्रदायिक दगे शान्त करने के लिये, बापू के ऐतिहासिक उपवास व्रत को भूल गये ?"

"नही, भूल नही गये, वह भी याद है ।" इतिहासज्ञ ने स्वीकार किया, "गांधीजी ने राजनैतिक क्षेत्र में साम्प्रदायिक भेद को बढ़ाने के कारण पैदा किये और फिर अपने आध्यात्मिक प्रभाव से उन्हे शान्त करने का भी यत्न किया । पहली बात का प्रभाव तो हिन्दू-मुसलमानो

के परम्परागत संस्कारो के कारण बहुत जल्दी हो गया। उनकी आध्यात्मिकता का प्रभाव उतना नही हुआ क्योकि मुसलमानो की साम्प्रदायिक धारणा, गाधी जी की आध्यात्मिकता को स्वीकार न कर सकती थी। गाधी जी ने अपने आपको हिन्दू एलान करके भी अपनी निष्पक्षता प्रमाणित करने का बहुत यत्न किया। उन्होने यत्न किया कि मुसलमान भी उन्हे अपना धार्मिक गुरु मान ले परन्तु मुसलमानों की साम्प्रदायिक संकीर्णता ने यह स्वीकार नही किया। यहाँ तक कि गाधी जी के खास मित्र मौलाना मुहम्मदअली ही कह गये कि अदना से अदना मुसलमान भी मेरे नजदीक गाधी से बडा है। गाधी जी ने साम्प्रदायिक भेद के कारण तो पैदा कर दिये परन्तु उन कारणो को दूर किये बिना, अपने प्राण दे देने की धौस देकर, साम्प्रदायिक द्वेष को दबाना भी चाहा। साम्प्रदायिक भेद इस तरह दूर नही हो सकते थे क्योकि यह युक्ति नही, दबाव था। गाधी जी ने मुसलमानो के प्रति अपनी उदारता दिखाकर उनका हृदय परिवर्तन करना चाहा। संकीर्ण विचार हिन्दुओं ने समझा कि गांधी जी मुसलमानो को अपना भक्त बनाने के लिये हिन्दू-हितो को न्योछावर कर रहे है। परिणाम मे मुस्लिम-विरोधी हिन्दू-हित और हिन्दू-राष्ट्र के आन्दोलन को उत्साह मिला।

"गाधी जी की हत्या देश के लिये अत्यन्त खेद और कलंक की बात है परन्तु वह हत्या इस बात का प्रमाण थी कि साम्प्रदायिक एकता के लिये गाधी जी के उपवास व्यर्थ गये। उनकी हत्या हिन्दू-मुसलिम विरोधो और वैमनस्य की चरम सीमा का दिग्दर्शन था। हिन्दू-मुसलमानो का साम्प्रदायिक वैमनस्य दूर करने का उपाय, शोषित हिन्दू-मुसलमानो मे आर्थिक मागो पर श्रेणी के आधार पर एकता है। ऐसी एकता गाधी जी को मंजूर नही थी क्योकि यह एकता शोषित हिन्दू-मुसलमानों मे उनका शोषण करने वाली, उनकी साझी शत्रु पूजीपति श्रेणी के विरुद्ध, शोषक व्यवस्था को बदलने के लिये ही हो सकती थी। गाधी जी जनता के अपने हित के खयाल से नही, अपने हुक्म से जनता की एकता कराना

चाहते थे । उसमें जितनी सफलता हुई, उससे अधिक की सम्भावना हो ही नही सकती थी । गोडसे द्वारा की गयी गाधी जी मूर्खतापूर्ण हिसा, एक मूर्खता द्वारा दूसरी मूर्खता का उपाय करने की हिमाकत ही थी।"

सर्वोदयीजी विरोध में 'वाक आउट' करने के लिये खडे हो गये परन्तु उन्हे बैठा कर प्रसंग को दूसरे ढंग से चलाया गया .

"आप नाराज न हो, हम नैतिकता, न्याय और अन्याय के झगडे में ईश्वर को घसीटना इसलिये उचित नही समझते ।" मार्क्सवादी बोले, "क्योकि ईश्वर की प्रेरणा को मनुष्य अपनी बुद्धि और विश्वास से ही ग्रहण करता है । जैसे आपका विश्वास और बुद्धि होगी, आप ईश्वर से वैसी ही प्रेरणा पायेगे । आप नित्य जीवन में यही बात देखते है । ईश्वर-वादी के विश्वास के अनुसार, ईश्वर को न मानने वाले भी ईश्वर के विधान से स्वतंत्र नही है । नर-मास खाने वाले, नगे रहने वाले जंगली लोगों को, चागकाई शेक और चीन के कम्युनिस्टो को, हिटलर और स्टैलिन को, जिन्ना और गांधी को ईश्वर भिन्न-भिन्न प्रेरणाये क्यो देता रहा है । जिसका जैसा विश्वास था, उसने वैसी प्रेरणा प्राप्त कर ली । प्रेरणा को आपका विश्वास और बुद्धि ही ग्रहण करती है । आप अपने निर्णय को ईश्वर की आज्ञा का नाम देते है । यह ईश्वर की शक्ति को अपनी इच्छा से जोड लेने का उपाय है ।"

"तो फिर नैतिकता, सत्य और न्याय की कोई धारणा शाश्वत नही।" निराशा से जिज्ञासु बोले, "वह सदा बदलती रहेगी ? सदा द्वन्द्व चलता रहेगा ?"

"हाँ, सदा द्वन्द्व ही चलता रहेगा !" सर्वोदयीजी ने उँगली उठा कर सुझाया, "द्वन्द्व की निरन्तर हिंसा से हमे ईश्वर का विश्वास और प्रेरणा ही बचा सकती है । मानेगे या नही आप ?"

"हम यह मानेंगे कि समय-समय पर द्वन्द्व होता रहा है और सामाजिक परिस्थितियों या समाज की आर्थिक परिस्थितियो के अनुकूल द्वन्द्व का समाधान भी होता रहा है ।".....इतिहासज्ञ कह रहे थे ।

मार्क्सवादी ने उन्हें टोक दिया, "समाज की व्यवस्था मे द्वन्द्व का अर्थ क्या है ? इन्द्व एक ऐतिहासिक क्रम है । इसका अर्थ है कि समाज अपने जीवन निर्वाह के साधनो के अनुकूल आवश्यक पदार्थो की पैदावार करने और समाज में उनका बँटवारा करने की व्यवस्था बनाता है । जब जीवन निर्वाह या पैदावार के नये-नये साधन समाज मे पैदा हो जाते है तो पैदावार के पुराने क्रम मे और बँटवारे के क्रम मे भी परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव होती है । परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव होना और इसके लिये प्रयत्न किया जाना ही व्यवस्था के पुराने चले आये क्रम मे द्वन्द्व पैदा हो जाना है । ऐसा द्वन्द्व सभी पदार्थों और स्थितियो मे होता है । यह द्वन्द्व उनके विकास का स्वाभविक गुण और साधन है ।

"पदार्थों और परिस्थितियो को दो तरह देखा या पहचाना जाता है, एक उनके परिमाण से और दूसरे उनके गुण से । वस्तुओ के परिमाण और गुण मे परस्पर सम्बन्ध रहता है । परिमाण और गुण एक दूसरे पर निर्भर करते है । यदि किसी वस्तु या जीव का परिमाण या शरीर वढ़ता जायगा तो एक सीमा पर उसका गुण बदल जायगा । इसी प्रकार किसी वस्तु या जीव मे कोई गुण बढता जायगा, तो एक सीमा पर यह गुण उस वस्तु के परिमाण या जीव के शरीर मे भी परिवर्तन कर देगा । परिमाण घटने-बढने से गुण में और गुण घटने-बढ़ने से परिमाण मे भीपरिवर्तन होजाताहै। यह बात वस्तुओ और जीवो के ही बारे में ही नही, समाज और समूह के बारे मे, उनकी व्यवस्था और विधान के बारे मे भी सत्य है । समाज की भौतिक और आर्थिक परिस्थितियों मे ऐसे द्वन्द्वों से ही नये विभान अथवा नयी नैतिकता, सत्य और न्याय का भी विकास होता है । संक्षेप मे यही तो मार्क्सवाद का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है । सम्पूर्ण इतिहास इसका साक्षी है । मनुष्य-समाज के इतिहास में इसी नियम के अनुसार अनेक व्यवस्थायें आयी है । उन व्यवस्थाओ से समाज का जितना विकास संभव था वह हो चुकने पर, द्वन्द्व द्वारा व्यवस्था मे फिर परिवर्तन होता गया है।"

"द्वन्द्व का अर्थ है हिंसा । हिंसा से कभी सत्य और न्याय का विकास

हो सकता है ?" सर्वोदयीजी ने घोर विरोध किया, "असम्भव ! द्वन्द्व और हिंसा अन्याय ही उत्पन्न होगा । इतिहास हमे यही बताता है ।"

"इतिहास आपको क्या बताता है ?" भवे सिकोड कर इतिहासज्ञ ने प्रश्न किया और बोले, "सुनिये, मनु महाराज के समय शूद्रो, अछूतों और स्त्रियो की समस्या थी इसीलिय उन्होंने इस विषय मे विधान बनाया । मनु महाराज का परिचय ईश्वर से उतना ही रहा होगा जितना गाधी जी का था । मनु महाराज को ईश्वर की प्रेरणा यह थी कि समाज के कल्याण के लिये सेवकों, शूद्रो, दासो और स्त्रियो को अपने मालकों के आधीन रहना चाहिए । मनु महाराज को विधान बनाने की आवश्यकता इसीलिए अनुभव हुई कि समाज मे द्वन्द्व था । मनु महाराज ने उस द्वन्द्व का समाधान मालिको के लिए, दासो और स्त्रियो की श्रम-शक्ति को आवश्यक समझ कर, मालिको की आर्थिक प्रभुता के आधार पर कर दिया । मनु महाराज का यह समाधान बहुत समय तक चला परन्तु यह विधान शाश्वत नही हो सका ।

"उत्पादन के साधनो मे विकास और परिवर्तन हो जाने पर दास श्रेणी मालिक की सम्पत्ति न रह कर सामन्तो की रैय्यत बन गयी । उसके बाद और परिवर्तन आने पर रैय्यत मजदूरी की तनख्वाह लेकर अपना श्रम वेचने वाली श्रेणी बन गयी । समाज की आर्थिक स्थिति में द्वन्द्व आकर, दास प्रथा मिट जाने और स्वतन्त्र मजदूर श्रेणी पैदा हो जाने को, आप द्वन्द्व से हिंसा पैदा होना कहेगे ? इसी प्रकार मनु महाराज ने अपने समय की आर्थिक आवश्यकता के कारण शूद्रो तथा स्त्रियो की जो अधिकारहीन स्थिति निश्चय कर दी थी, वह हजारो वर्षों तक चलने पर भी शाश्वत नही हो सकी । समाज में उत्पन्न हो जाने वाले आर्थिक तथा दूसरे द्वन्द्वों ने शूद्रों (हरिजनो) और स्त्रियों की स्थिति वैसी नही रहने दी जैसी मनु महाराज ने निश्चित की थी । शूद्रो और विधवा हिन्दू स्त्रियो को अपने समाज में स्थान देने के लिये तैयार मुस्लिम संस्कृति से भारत में आ जाने पर और अछूतों को अपना राज-

नैतिक सहायक बनाना चाहने वाले अंग्रेजो की नीति मे भी द्वन्द्व पैदा हुए। उन द्वन्द्वो का प्रभाव हिन्दू-समाज की नैतिकता और शूद्रो की स्थिति पर पडा है या नही ? भगवान ने मनु महाराज को प्रेरणा दी थी कि शूद्रो को अपने आधीन रखने के लिए, उन्हे शिक्षा से उन्नति कर सकने या उसमे महत्वाकाँक्षा पैदा होने का अवसर मत दो। भगवान ने शूद्रो को मुसलमानो और अंग्रेजो का सहायक बनते देख कर गाँधी जी को प्रेरणा दी कि शूद्रो को अपनाने के लिए मन्दिरो के द्वार खोल दो। कहिये, समय देखकर भगवान की राय बदल गयी या इससे पहले उनकी प्रेरणा समझने वालों की भूल थी !"

मार्क्सवादी बोल उठे, "आप यह तो मानेगे कि नैतिकता और आचार के नियमो की आवश्यकता मनुष्यो के परस्पर-सम्बन्धो को नियमित करने के लिए होती है। हमारे पूर्वजो ने धर्म और नैतिकता के जो दस लक्षण धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धैर्य, विद्या. सत्य और अक्रोध बताये है वे सब मनुष्यो के परस्पर- व्यवहार के बारे मे ही लागू होते है ।"

मार्क्सवादी को कुछ और याद आ गया; उन्होने बात बदल दी, "आप यह बताइये, यदि कोई मनुष्य ऐसे द्वीप मे रहता हो, जहाँ उसे दूसरे मनुष्यो से कभी सम्पर्क न पडता हो और न सम्पर्क पडने की सम्भावना हो, तो इस व्यक्ति के लिये आप नैतिक आदर्श कैसे निश्चय करेगे ? उसके लिए तो नैतिकता की आवश्यकता और मूल्य कुछ नही है न !"

"उसके लिये नैतिकता के प्रकट होने का अवसर नही है" शुद्ध-साहित्यिक जी ने उत्तर दिया।

"यही सही" मार्क्सवादी ने स्वीकार किया, "परिणाम यह निकला कि नैतिकता समाज में मनुष्यो के परस्पर-सम्बन्धो की सुव्यवस्था के अतिरिक्त और कुछ नही है" उन्हें निरुत्तर देखकर मार्क्सवादी दूसरी उँगली उठाकर बोले, "दूसरी बात, जीवन रक्षा के लिए आवश्यक पदार्थों

को परस्पर सहायता से उत्पन्न करने और समाज में उन्हें समुचित रूप से बॉटने के प्रयोजन से ही मनुष्य परस्पर-सम्पर्क मे आते हैं। समाज के जीवित रह सकने के लिए आवश्यक, इस आर्थिक व्यवस्था को ठीक ढंग से चलाने के लिए मनुष्यो के आपसी व्यवहार किस प्रकार के हो, इसी के लिए नैतिकता और व्यवस्था की जरूरत होती है और यही नैतिकता का आधार है। यदि आवश्यक पदार्थों को पैदा करने के ढंग बदल जायंगे और उनके बटवारे के ढग मे भी परिवर्वन आ जायगा, तो नैतिकता को भी बदलना ही होगा। आप दासो का प्रयोग करने वाले और मशीनो का प्रयोग करने वाले समाजो की नैतिकता मे स्पष्ट भेद देखते है; मानते है या नही आप !"

"आपकी बात का अभिप्राय तो होता है" भद्र पुरुष बोले, "कि नैतिकता, सत्य और न्याय कोई स्वत. सिद्ध शाश्वत वस्तु नही है। जिस समय समाज की जैसी परिस्थिति और आवश्यकता हो नैतिकता को वैसे ही ढाल लिया जाये !"

कामरेड को बैठे "इसका यह भी अर्थ है कि समाज मे जो श्रेणी पैदावार के साधनो की स्वामी होगी वही श्रेणी समाज की नैतिकता का भी निश्चय करेगी।"

सर्वोदयीजी निराशा प्रकट करने के लिए दोनो हाथ फैलाकर दुहाई देते हुये बोले, "तो सब कुछ क्षुद्र स्वार्थी मनुष्य के हाथ की ही बात हो गयी। सब कुछ मनुष्य के स्वार्थ का ही खेल हो गया।"

वैज्ञानिक ने विस्मय प्रकट करने के लिए ठोड़ी उठाकर और आँखे फैला कर पूछा, "इतने निराश क्यों हो गये सर्वोदयीजी ?.....आप समाज को ईश्वर प्रेरणा की नकेल से काबू करके यह नकेल अपने ही हाथ में रखना क्यों आवश्यक समझते है ! मनुष्य की स्वतन्त्रता से आप को निराशा क्यो होती है। आप की यह ईश्वर का प्रतिनिधि होने के दावे से बनायी गयी नैतिकता रामराज की नैतिकता है। दूसरी ओर है

मेहनत करने वाली श्रेणी द्वारा, सबके लिए न्याय और समान अवसर की रक्षा की नैतिकता ।"

"ऐतिहासिक तथ्य तो यही है ।" इतिहासज्ञ ने विवशता प्रकट करते हुए स्वीकार किया, "कि नैतिकता मनुष्यो के परस्पर सम्बन्धो से ही पैदा होती है, उन्ही के लिए उसकी जरूरत है तो मनुष्यो के परस्पर सम्बन्धो से ही उसका निर्णय भी होगा; सदा होता भी रहा है । यह आप मनु महाराज के समय और अपने समय की तुलना मे देखते है । ऐसे ही पूंजीवादी व्यवस्था की नैतिकता मुनाफा कमाकर, बटोरी हुई सम्पति से दूसरो के श्रम का फल छीन सकने के अवसर के लिए, उपयोगी नियमो के आधार पर बनी है । समाजवादी समाज मे सम्पत्ति और पैदावार के बटवारे की व्यवस्था दूसरे ढग से होने से नैतिकता मे भी परिवर्तन हो गया है ।"

"मुनाफा कमाकर बटोरी हुई सम्पत्ति से दूसरो के श्रम का फल छीनने के अवसर की नैतिकता से आपका अभिप्राय क्या है ?" सर्वोदयी-जी ने प्रश्न किया, "नैतिकता का आधार तो अहिसा है ।"

"आपका कहना ठीक है कि नैतिकता का आधार अहिंसा है ।" मार्क्सवादी ने स्वीकार किया, "परन्तु हिसा क्या है ? हिंसा का मतलब है दूसरे को दुख देना । कोई व्यक्ति दुख और हिंसा तभी अनुभव करता है जब उसके शरीर या हित पर चोट आती है । कोई व्यक्ति दूसरे पर तभी आघात करता है जब अपनी रक्षा करना चाहता है या अपना स्वार्थ पूरा करना चाहता है । स्वार्थ क्या है ? जीवित रह सकने के लिए अवसर और इसके लिये आवश्यक साधनो की इच्छा । जीवन के लिये उपयोगी पदार्थ और इन पदार्थों को पैदा करने के साधन ही सम्पत्ति है । पूँजीवादी नैतिकता मे किसी दूसरे की सम्पत्ति का एक पैसा उठा लेना अनैतिक है और हिंसा है परन्तु मुनाफे के नाम पर एक हजार आदमियों की मेहनत का फल हडप लेना, पूँजीवादी नैतिकता में न हिंसा है न अपराध है ।"

"मेहनत और पैसे मे अन्तर क्या है ?" कामरेड बोले, ' पैसा मेहनत का ठोस रूप होता है । यदि किसी को बिना कुछ दिये पैसा ले लेना अन्याय है तो किसी की मेहनत का पूरा फल या दाम न देना भी अन्याय है ।"

"नही, पूँजीवादी नैतिकता का न्याय इसमें भेद करता है" वैज्ञानिक ने उत्तर दिया, "यो तो मेहनत ही पैसा है परन्तु मेहनत और पैसे मे भेद है । मेहनत की शक्ति रहती है मजदूर के शरीर मे और पैसा रहता है पूँजीपति की तिजोरी मे । पूंजीवाद की नैतिकता मजदूर की श्रम-शक्ति से लाभ उठाने के लिए सम्पत्ति की मालिक श्रेणी द्वारा बनायी गयी नैतिकता है । इसलिये यह नैतिकता पूंजीपति के ही स्वार्थ की रक्षा करती है । न्याय के लिये कानून निश्चित करने का अवसर श्रमिक श्रेणी को नही देती" विशेष रूप से सर्वोदयीजी को सुनाकर उन्होने कहा, "मजदूर को कठिनता से निर्वाह-मात्र के लायक मज़दूरी देकर, उसकी मेहनत से पैदा हुआ बहुत अधिक माल हड़प लेना ठीक ऐसा है, जैसे पशु को आठ आने का भूसा खिला कर दो रुपये का दूध दोह लेना । गाँधीजी पशुओ का दूध पीना तो अहिंसा के आदर्श से गिरना समझते थे परन्तु मजदूर के श्रम से मुनाफा उठाना उन्हे अन्याय नही जंचा, यह है राम-राज की नैतिकता ।

"रामराजी नैतिकता मे पूँजीपति श्रेणी मेहनत करने वाली श्रेणी के श्रम के फल से मुनाफा कमा सकना उसी प्रकार नैतिक समझती है जैसे मनुष्य पशुओ के श्रम से लाभ उठाना अपना मनुष्यत्व का अधिकार समझता है । पशु के श्रम और दूध से लाभ उठाने का अधिकार, मनुष्य पशु को अपने वश मे रखने के कारण पाता है । पूँजीवाद की रामराजी नैतिकता मेहनत करने वाली श्रेणी को अपने वश में रखने के लिये, मज़दूर और नौकर को उनके श्रम से होने वाली पैदावार में से केवल उतना भाग देती है, जिससे वे पूँजीपति श्रेणी के मोहताज बने रहे, स्वयं पैदावार के साधन न बना ले । इसी बल पर पूंजीपति श्रेणी मुनाफा कमा सकती है । मुनाफा ही पूजीवाद की आधार शिला है ।

मार्क्सवादी और कम्युनिस्ट नैतिकता मे दूसरे के श्रम से मुनाफा कमाना वैसा ही अपराध है जैसा कि किसी दूसरे के धन की चोरी। पूँजीवाद मे मेहनत करने वाली श्रेणी स्वतन्त्र नही हो सकती। सामन्तवाद और दासप्रथा के समय मेहनत करने वालों को खरीद कर जीवन भर के लिये गुलाम बना लिया जाता था। पूंजीवाद मे उन्हे साधनहीन बना कर, मज़दूरी के लिये मजबूर करके, पराधीन बना लिया जाता है। मेहनत करने वाली श्रेणी की स्वतन्त्रता केवल समाजवाद मे ही सम्भव है। मानव-समाज के इतिहास मे, मज़दूर राज की नैतिकता पूँजीवादी नैतिकता से अगला और उन्नत कदम है और ऊँची नैतिकता और अहिंसा है।"

"क्या !" विस्मय से सर्वोदयीजी ने पूछा, "श्रेणी संघर्ष से उत्पन्न होने वाली मजदूर राज की व्यवस्था ऊँची नैतिकता अहिंसा है।"

"निश्चय श्रीमान्," इतिहासज्ञ बोले, "जिस समय पूँजीवादी व्यवस्था ने सामन्तवादी व्यवस्था को तोड कर कृषक दासो (रैयत) को स्वतन्त्र किया था, बेगार का अधिकार समाप्त किया था, यंत्रो के उपयोग से पैदावार को बढ़ाया था, उस समय वह उन्नतिशील और विकासशील थी। पूँजीवादी व्यवस्था मनुष्य-समाज के विकास को जितना अवसर दे सकती थी, दे चुकी है। अब वह व्यवस्था समाज के विकास के मार्ग में रुकावट बन रही है। भविष्य मे विकास का मार्ग तैयार करना समाजवादी व्यवस्था का ही काम है। समाजवादी व्यवस्था निश्चय ही विकास की अगली मंजिल होगी। यह नयी व्यवस्था, पूँजीवादी व्यवस्था के समय समाज में शेष रही और उत्पन्न हुई हिंसा को समाप्त करेगी। श्रेणी संघर्ष की बात आप कहते है; पूँजीवादी प्रणाली को सामन्तशाही से समाज की शासन व्यवस्था अपने हाथ में लेने के लिये कम संघर्ष नही करना पड़ा था। उस सघर्ष मे राजाओ के सिर कटे और प्रजा ने भी खून मे गोते लगाये, तब जाकर पूँजीवादी नैतिकता के आदर्श 'मनुष्यमात्र को समान अधिकार' और 'सब को जीविका कमाने और व्यवसाय करने की समान स्वतन्त्रता' का सिद्धान्त माना गया।

आज आप मनुष्यों की कानूनी समानता और जीविका उपार्जन की स्वतन्त्रता को मानवता का प्राकृतिक और जन्मसिद्ध अधिकार कहते है, परन्तु दासता की प्रथा के युग में, सामन्तशाही के युग मे, राजसत्ता के रामराजी युग मे मनुष्य के यह जन्मसिद्ध और प्राकृतिक अधिकार कहाँ थे ? यह सब अधिकार कहाँ थे ? यह सब अधिकार मनुष्य-समाज ने ऐतिहासिक द्वन्द्वो और संघर्षों के परिणाम में ही पाये हैं और नवीन अधिकारों की भूमिका भी तैयार कर दी है। समाजवादी व्यवस्था समाज में सब व्यक्तियों के लिये समान कानूनी अधिकार से अगला कदम 'समान अवसर' देगी और व्यवसायिक स्वतन्त्रता से अगला कदम 'व्यक्तियों को अपने श्रम का पूरा फल पाने का समान अवसर' देगी। जब तक सब व्यक्तियों को जीविका कमाने और अपने श्रम का पूरा फल पाने का समान अवसर न हो, जीविका कमाने की स्वतन्त्रता का अर्थ कुछ नही।"

"पूंजीवादी व्यवस्था का प्रजातन्त्र और सब मनुष्यो को समान अधिकार केवल धोखा है।" मार्क्सवादी ने बहुत ज़ोर से कहा, "जब अधिकार के उपयोग करने का सामर्थ्य और अवसर न हो तो अधिकार का लाभ क्या ? यह बात ठीक वैसे ही है कि आप भोजन खाने का अधिकार तो सब व्यक्तियों को दे दें परन्तु भोजन पा सकने का अवसर केवल अपने मित्रों को ही दें। बाद में भूखे मरने वालों को दोष दें कि तुम्हें भी तो सब के समान खाने का अधिकार था। पूँजीवाद कहता है, देश की सम्पूर्ण जनता को समाज की व्यवस्था बनाने और शासन में भाग लेने का, आर्थिक व्यवस्था बनाने का अधिकार समान रूप से है।

"पूंजीवादी प्रजातन्त्र मे, समाज की व्यवस्था चलाते हैं जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि। इन प्रतिनिधियों के चुनाव के लिये कुछ साधनों की आवश्यकता होती है। ऐसे सब साधनों पर सम्पत्ति की मालिक श्रेणी का ही एकाधिकार है। आप जानते हैं कि चुनाव के लिए

उम्मीदवार लोग १५ से ५० हजार तक रुपया खर्च करते है। आप के देश में कितने आदमी ऐसे साधनो का उपयोग कर सकने की अवस्था मे है? अधिकाश आदमियो के पास ऐसे साधन बिलकुल है ही नही। कुछ के पास यह साधन दूसरों की अपेक्षा लाखो गुणा अधिक है। ऐसी अवस्था मे स्पष्ट है कि केवल सम्पत्ति की मालिक श्रेणी के स्वीकृत लोग ही प्रतिनिधि चुने जायेंगे, साधनहीन श्रेणी के प्रतिनिधि नही।"

"समाजवादी संस्कृति और नैतिकता के विचार से चुनाव के लिए असमान अवसर की ऐसी परिस्थितियो मे प्रतिनिधियो का चुनाव होना अन्याय, हिंसा और अनैतिकता है। समाज मे कुछ लोगो के सब साधनो का मालिक बने रहने पर और अधिकांश के साधनहीन रहने पर राजनैतिक अधिकारो की समानता की बात केवल प्रपच है। यह है पूँजीवादी-प्रजातंत्र जिसमे पूजी को ही खुल खेलने का अवसर रहता है। वास्तविक प्रजातत्र तो है मजदूर राज का प्रजातन्त्र। जिसमे सब साधन समाज की साझी सम्पत्ति होने के कारण अवसर की समानता पहली शर्त होगी। अवसर और साधनों के बिना अधिकार केवल धोखा है।"

सर्वोदयीजी ने चेहरे पर सहानुभूति और करुणा का भाव लाकर समझाया "सम्पत्ति और भौतिक समृद्धि को लक्ष बना कर आप जिस भौतिक संस्कृति (मैटिरियल कलचर), भौतिक नैतिकता और माया-वाद को इस देश पर लादना चाहते है उससे देश में शांति नही हो सकेगी, संघर्ष और हिंसा ही बढ़ेगी। उससे न जनता का निस्तार हो सकेगा और न व्यक्ति का। माया और सांसारिक सम्पत्ति का तो दुर्गुण ही यह है कि आप जितना इसे पायेंगे, उतनी ही आपकी कामना और लोभ बढ़ते जायेंगे; उतना ही संघर्ष और हिंसा बढ़ती जायगी, व्यक्ति और समाज का पतन होता जायगा।"

कामरेड ने बहुत संयम से पूछा, "सर्वोदयीजी, आप सम्पत्ति या माया की निन्दा करते है परन्तु आप ही बताइये, जीवन के साधनों के बिना जीवित कैसे रहा जा सकता है!"

"जीवित रहना ही तो आदर्श नहीं है।" सर्वोदयीजी ने उत्तर दिया, "यह जीवन तो मोक्ष प्राप्ति अथवा परमात्मा में लीन हो जाने का ही साधन है। इसी आदर्श पर चल कर हम व्यक्तिगत और सामाजिक शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। सांसारिक सम्पत्ति को लक्ष मानने वाले लोग पैसे-पैसे के लिये मरते हैं, दूसरे का गला काटते हैं। आध्यात्मिक सुख को आदर्श मानने वाले तो राजपाट को भी लात मार जाते हैं। हमारे देश में तो राजा लोग इस आध्यात्मिक सुख के लिये राजपाट छोड़कर चल देते थे। राज भी करते थे तो विदेह होकर, जैसे महाराज जनक। वही सुख हमारे लिये आदर्श होना चाहिये। इस सुख को मनुष्य किसी से संघर्ष किये बिना, किसी का दास बने बिना, यहाँ तक कि प्राकृतिक आवश्यकताओं का भी दास बने बिना पा सकता है। असली स्वतन्त्रता और असली सुख तो वही है।"

मार्क्सवादी ने उनकी बात पकड़ कर कहा—"इसका मतलब है कि व्यक्ति नितान्त स्वार्थी हो जाय। समाज से मरने-जीने की चिन्ता न करके केवल अपनी काल्पनिक मुक्ति की ही चिन्ता करे। ऐसे आध्यात्मिक सुख की खोज करने वाले लोगों को पालने का बोझ समाज के सिर रहता है। यदि सभी लोग माया का बन्धन तोड़ कर आध्यात्मिक सुख की ही बात सोचें तो माया अर्थात् समाज का आर्थिक संगठन ही समाप्त हो जायगा। यदि समाज निष्क्रिय आत्मवादी का पालन न करे तो उसका आध्यात्म भी न चलेगा। जो आध्यात्मवादी चाहता है कि समाज उसका पालन करे और वह समाज के लिये कुछ न करे, उससे बढ़ कर स्वार्थी कौन हो सकता है!"

सर्वोदयीजी ने कहा, "जो अपनी भी चिंता नहीं करता उसे ही आप स्वार्थी कहते हैं और उनका चेहरा आत्मिक संतोष से गम्भीर हो गया। सर्वोदयीजी की शान्ति का कुछ प्रभाव साहित्यिक जिज्ञासु और भद्र पुरुष पर भी पड़ता जान पड़ा परन्तु कामरेड उत्तेजित होकर बोल उठे, "जी हाँ, आपका उपदेश है कि सर्व-साधारण माया के संघर्ष में न

पड़ कर जीवन के मोह से स्वतन्त्र हो जायें और सम्पत्ति के मालिक लोग जनता की सम्पत्ति के सरक्षक बने रहें।"

इतिहासज्ञ सर्वोदयीजी की बात से मुस्करा कर बोले, "आपने जिस अतुलनीय आध्यात्मिक सुख को आदर्श मानने का उपदेश दिया है, उसका नुसखा नया नही है। आज से हजारों वर्ष पूर्व ही ऋषियो ने उसे सुझाया था परन्तु तब से कितने लोग उसे पा सके? आपको एक राजा जनक का नाम याद है परन्तु और दूसरे कितने राजा उस सुख से संतुष्ट हो सके? सर्वसाधारण जनता तो उस आध्यात्मिक सुख को पा नही सकी...."

शुद्धसाहित्यिकजी भी शायद उस आध्यात्मिक सुख के पास-पड़ोस मे पहुँच रहे थे। वे हाथ उठाकर बोले, "अरे, वह सर्व-साधारण की चीज़ है? विरले ही, हजारो लाखो मे कोई एक ही उस सिद्धि को पा सकता है।"

"ठीक है, ठीक है," इतिहासज्ञ ने साहित्यिक की बात को स्वीकार किया, "यही हम कहना चाहते है। जब आप मानते हैं कि वह आध्यात्मिक सुख विरले ही लोगो के लिये है, सबके लिये नही तो सर्व-साधारण को उसका उपदेश देना धोखा है। हम समाज की समस्या को सार्वजनिक रूप से देखना चाहते हैं। उदाहरण के तौर पर कुछ आदमो तैरने में इतने चतुर हो सकते है कि बड़ी से बड़ी नदी की बाढ़ के समय भी तैर कर पार कर लेगे। तैरने का इतना अभ्यास होना प्रशंसा की बात है परन्तु अच्छा तैर सकने के अभ्यास को आदर्श बना कर आप यह निश्चय नहीं कर सकते कि हमे नदियों पर पुल नही बनाना चाहिये। इसी प्रकार यदि विरले ही लोगों के लिये आध्यात्मिक सुख सम्भव भी हो, तो उसी को लक्ष बना कर, हम समाज में आर्थिक सुव्यवस्था और सर्व-साधारण के लिये जीवन के साधन प्राप्त कर सकने के लिये, समान अवसर लाने के संघर्ष की उपेक्षा नही कर सकते। हम चाहते हैं कि सब लोगों को जीविका प्राप्त करने का समान अवसर हो,

सब लोगों को अपने श्रम का पूरा फल पाने का समान अवसर हो। क्या यह बात आध्यात्मिकता के विरुद्ध है। समाजवादी नैतिकता में आध्यात्मिक सुख को लक्ष मानने वालों के लिये कोई बाधा नही है। आप उस सुख के लिये यत्न कीजिये। सर्व-साधारण लोग वैसा न कर सकें तो उन्हे रहने दीजिये। आपकी रामराजी नैतिकता में सर्व-साधारण के लिये जीवन रक्षा के साधन प्राप्त करने का अवसर नही है, हम इसी का उपाय करना चाहते हैं। आप हमें उपदेश देते है, आध्यात्मिक सुख से सन्तुष्ट हो जाने का।"

"परन्तु सांसारिक साधनो के लिये समाज की यह दौड़ और संघर्ष आपको यानि व्यक्ति और समाज को कहाँ ले जा रहा है। यह आप क्यों नहीं देखते !" सर्वोदयीजी ने चेतावनी दी, 'कैसा भयंकर पतन समाज का हो रहा है। कितनी हिंसा बढ़ रही है।···इस राह पर चल कर समाज कहाँ जायगा।"

इतिहासज्ञ सर्वोदयीजी की बात से आतंकित न हो पूछ बैठे, "समाज का पतन हो रहा है।···आप कैसे कहते हैं कि समाज का पतन हो रहा है ? आप इस मकान में बैठे हैं जिसमें कांच की खिडकियाँ और दरवाजे लगे है। यदि कोई आदमी चाहे तो इन किवाड़ों को मामूली धक्के से तोड़ सकता है परन्तु इस घर मे रहने वाले भय से कापते नही रहते। उन्हें भरोसा है कि समाज में अंधेर नही है कि रात में जो चाहे उन्हें लूट ले जाये और उनका गला काट जाये। आज से चार-पाँच सौ वर्ष पूर्व कोई आदमी समाज पर इतना भरोसा कर सकता था ! समाज पर किसी को इतना विश्वास ! लोग अपनी कमाई की रक्षा के लिये दो गज मोटी दीवारें बना कर शहतीरो और लोहे के दरवाजे लगाते थे, तब भी उनका मन भय से व्याकुल रहता था। आज आप हजारो रुपया लेकर, निश्चिन्त अकेले कलकत्ते का सफ़र करते हैं। पाँच सौ वर्ष पूर्व आप अपने आपको इतना सुरक्षित नहीं समझते थे। बताइये, समाज में हिंसा और अव्यवस्था बढ़ रही है या घट रही है ! पहले आपके शहरों

में गली-गली वेश्यायें कोठों पर शोभायमान थी। वेश्या रखना बड़प्पन का चिन्ह समझा जाता था। आज आपकी म्युनिसपैल्टियाँ या तो वेश्याओं को अपनी सीमा मे रहने देने की आज्ञा ही नही देती और देती भी है तो उन्हें शहर से कूड़े की तरह बटोर कर दूर रख देती हैं। हमारे पूर्वज जुआ खेलना बड़प्पन समझते थे। एक आदमी दूसरे का घर-बाहर, सम्पत्ति, राज-पाट जीत कर, दूसरे की स्त्री तक को जीत कर, हारे हुये व्यक्ति को जंगलों में हाँक देता था। समाज भी इसे न्याय स्वीकार कर लेता था। आज जुआ खेलिये तो कानूनन जेल जाना पड़ेगा। इसे समाज का पतन कहियेगा.....!"

राष्ट्रीयजी ने उन्हे टोक दिया, "आपको अपनी सस्कृति को गाली देने मे जाने क्या सुख मिलता है? हमारे पूर्वजों की आचार और नैतिकता इतनी ऊँची थी कि इस देश मे लोग अपने घरो में ताला भी नहीं लगाते थे और यह बात विदेशी यात्रियो तक ने स्वीकार की है।"

वैज्ञानिक बोल उठे, "ताला नहीं लगाते थे! ताला बनाना नही जानते होंगे तो ताला लगाते भी न होंगे या घर मे कुछ न रहने से जरूरत न होती होगी। परन्तु चोरी-डाका तो उस समय साधारण सी बात थी। एक राजा उठकर अश्वमेघ यज्ञ करके दूसरे राजाओं को लूट लेता था। एक राजा दूसरे राजा की बहू-बेटियो को छीन लाता था और ऐसे राजा प्रतापी और तेजस्वी माने जाते थे। आज का समाज यह कभी सहन नहीं कर सकता।"

"यह मुसलमानों के राज में ...।" राष्ट्रीय कह रहे थे।

इतिहासज्ञ चिल्ला पड़े, "मुसलमानों के राज में भी और महाभारत के समय में भी। खैर, जाने दीजिये, उस रामराजी नैतिकता में राजा के लिये एक नैतिकता थी और सर्व-साधारण के लिये दूसरी। हाँ, मनु-स्मृति तो पढ़ी ही होगी आपने। उस समय चोर के लिये, पशुओं से व्यभिचार के लिये भी सजायें बतायी गई है परन्तु बहुविवाह के लिये कोई दंड नहीं है। यह अपराध होते नहीं थे तो इनके लिये सज़ा तज-

बीज़ करने की क्या जरूरत थी ? उस समय चोरी करने वाले के लिये दण्ड था, हाथ काट लेना। आज समाज चोरों की एक स्थान पर बन्द करके उन्हें सुधारने का यत्न करता है। कौन समाज ज्यादा हिंसक समझा जाय !.....

आज हमारे समाज का नैतिक आदर्श उदार और ऊँचा हो गया है, परस्पर विश्वास बढ़ गया है, हिंसा बहुत कम हो गयी है क्योकि भौतिक उन्नति ने हमारे रहन-सहन का स्तर पहले से ऊँचा कर दिया है। मनुष्य-समाज का आचार-व्यवहार उसके भौतिक विकास पर ही निर्भर करता है। मनुष्य-समाज पतन की ओर नहीं, विकास और उन्नति की ओर जा रहा है। आज समाज में आर्थिक संकट के कारण हम जीवन को कठिन और संघर्ष-मय पा रहे है परन्तु यदि हम संघर्ष करके इस संकट को दूर कर लेगे तो हम समाजवाद की सर्वतोन्मुखी सामाजिक समृद्धि के युग में पहुँच जायेगे। आप रूस और चीन की ही अवस्था देखिये··· ''

"अपका तो वह हाल है," राष्ट्रीय हंस कर बोले, "अनाज खाये घर का, गीत गाये जग का। जब देखो रूस-चीन की बात। अपनी भी बात कहिये !"

कामरेड ने भी ऊँचे स्वर में उत्तर दिया, "आप ही फर्माइये, आपके किस गुण का गीत गायें ? क्या इस बात का कि देश में अन्न सकट बढ़ता ही जा रहा है ? क्या इस बात का कि कपड़ा नहीं मिलता, मकान नही मिलता और जनता पर दमन बढ़ता जा रहा है ? रूस आज संसार भर के साम्राज्यवाद के सामने सीना ठोक कर खड़ा है। उसने जितनी योजनायें बनायी समय से पहले पूरी करके रख दी और बिना किसी की सहायता के। आपने जितनी योजनायें बनाईं, एक भी पूरी नही कर पाये और दुनिया के सामने खीसें निकाल दी, हमारी मदद करो। चीन को पूंजीशाही से स्वतन्त्र हुये छः मास नहीं हुये और वहाँ सदा बना रहने वाला दुर्भिक्ष मिटने लगा। आप स्वतन्त्र हुये तो देश में दुर्भिक्ष बढ़ने लगा। चीन आप की तरह अमेरिका की जूती

चाटने नही गया। यह है मजदूर-राज की नैतिकता और नैतिक बल। राम-राज की नैतिकता यह है कि हम भूखों मर रहे है और आपके नेहरू और मुशी कहे जा रहे है, घबराओ नही, देश मे सब कुछ है, दुर्भिक्ष नही है। अरे भाई, तुम्हारे लिये सब कुछ है, दुर्भिक्ष नही है। हमारे लिये तो कुछ नही, दुर्भिक्ष ही है। राम-राज में राजा के लिये कभी दुर्भिक्ष नही होता, प्रजा के लिये ही होता है। तिस पर आप यह भी चाहते है कि हम आपके गुण गाये।"

"रूस का आदर्श आप हमारे सामने रखना चाहते है!" क्षुब्ध स्वर मे साहित्यिकजी ने विरोध किया, "रूस की उस बर्बर, पशुतापूर्ण व्यवस्था का आदर्श, जिसने मनुष्य के व्यक्तित्व का गला घोट कर उसे एक मशीन बना दिया है, जहाँ कोई व्यक्ति स्वतन्त्रता से अपने विचार नही प्रकट कर सकता, मनुष्य स्वतन्त्र विचार नही रख सकता, अपने जीवन का स्वतन्त्र ढंग निश्चित नही कर सकता, आप हमे उस विदेशी संस्कृति का कैदी बना देना चाहते हैं, जहाँ लोगो को कोड़े लगते है। भारत के स्वतन्त्र उन्मुक्त प्राण अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता छोड़कर ऐसी दासता कभी स्वीकार नही कर सकते।"

"आप व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की बात करते हैं, कौन है स्वतन्त्र आपके देश में? क्या आज बम्बई में भत्ता छीन लिया जाने के कारण हड़ताल पर डटे, भूख से मरते सवा दो लाख मजदूर स्वतन्त्र है? क्या इसी सप्ताह इन्दौर मे गोलिया खाने वाले पन्द्रह हजार मजदूर या ९ अगस्त के दिन ग्वालियर गोली-काण्ड में मारे जाने वाले सात विद्यार्थी![1] आपके अपने शहर में कपड़ा मिल के मजदूर जो डेढ़ मास से मजदूरी की कमी के कारण हड़ताल पर थे और अब निराश होकर भूखे पेट ही काम करने के लिये विवश हो गये, क्या वे व्यक्तिगत रूप से स्वतन्त्र हैं? क्या बीस हजार राजनैतिक बन्दी जो आज जेल में सड़ रहे है, क्या वे सब सर-

---

१. यह लेख अगस्त १९५० के तीसरे सप्ताह में लिखा गया था।

कारी नौकर जिनकी छटनी हो रही है और जिनका दिल बच्चों के भूखे मरने की आशंका से डूबा जा रहा है, क्या करोड़ों बेज़मीन किसान व्यक्तिगत रूप से स्वतन्त्र हैं ? महात्मा जी, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता केवल आपके बिड़ला, टाटा, सिंहानिया को और उनके दलालों को है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता है मिल मालिक को। उसकी मिल में मजदूरी करने वाले हजारों-मजदूरों को नहीं, जो रोटी के टुकड़े के लिये मोहताज हैं। उनकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता केवल राम-राजी नैतिकता है। सर्व-साधारण को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, समाजवादी रूस और चीन मे है जहाँ प्रजा सब साधनों की मालिक है, जहाँ प्रत्येक मेहनत करने वाले के लिये जीविका देना राज्य की जिम्मेवारी है, यह है मजदूर राज की नैतिकता। बम्बई में मजदूर गिरफ्तार हो रहे हैं क्योंकि वे अपना भत्ता मांगते है। भत्ता न देने के लिये मिल मालिक तो गिरफ्तार नही किये जा रहे ! तिस पर आप जन-राज और प्रजा-राज का ढोंग करते हैं। यह है आपके राम-राज की नैतिकता !"

क्लब का वातावरण अधिक गरम हो गया था इसलिये वैज्ञानिक शान्त स्वर में बोले, "आप पूँजीवादी समाचार पत्रों के प्रचार को निष्पक्ष समझ कर, उनके समाजवाद-विरोधी प्रचार का विश्वास कर लेते हैं परन्तु समाचार पत्र स्वयं पूँजी के बड़े-बड़े आयोजन हैं। इनमें से किसी भी समाचार पत्र को पलट कर देखिये, उसमें दो तिहाई कागज विज्ञापन से भरे होगे ? अखबार का पेट विज्ञापनों से पलता है। विज्ञापन मजदूर नही पूँजीपति देता है। पूँजीपति मुनाफा कमाने के लिये विज्ञापन देता है और इस काम की दलाली में अखबार को पैसा देता है। अखबार स्वयं मुनाफे के लिये कारोबार हैं। अखबार पूँजीवाद के विरुद्ध प्रचार करें तो अपना पेट काटें ! क्या आप उनसे ऐसी आशा कर सकते हैं ? पूँजीपति का अखबार न तो दूसरे पूँजीपति को नाराज कर सकता है न सरकार को क्योंकि सरकारी विज्ञापन आमदनी का बड़ा भारी साधन है। आपको याद होगा 'क्रासरोड' में पटेल जी के

सुपुत्र को रिफ्यूजी फंड का पचास लाख रुपया धाधली से दे दिया जाने का समाचार अगस्त के दूसरे सप्ताह में छपा था परन्तु पूंजीवादी पत्र उस समाचार को पी गये। बात साफ है कि राम-राज के लौह पुरुष को कौन नाराज करे ?"

इतिहासज्ञ बोल उठे—"अभी आपने सुना होगा कि अमेरिका के प्रेसीडेण्ट रुजवेल्ट साहब ने घोषणा की है कि वे कम्युनिज्म के विरुद्ध सत्य का प्रचार करने के लिये आठ करोड़ नब्बे लाख डालर खर्च करेंगे। आजकल एक डालर लगभग चार रुपये का है। कम्युनिज्म और समाजवाद के निरंकुश दमन से तेंतीस वर्ष में रूस कितना तबाह हो गया और संसार कैसे तबाह हो जायगा, यह बताने के लिये जनता के दिमाग पर अरबो रुपये का पर्दा डालने की जरूरत है परन्तु रूस कितना तबाह हो गया यह इसी बात से स्पष्ट है कि रुजवेल्ट साहब आज रूस से काप रहे है। अमेरिका और दूसरे पूजीवादी देशो की जनता रूस की जनता के उदाहरण से पूजीवादी व्यवस्था के शोषण बन्धन को तोड़ न फेंके, इसलिये जनता को झूठ के पर्दे मे रखना आवश्यक है। पूंजीपतियो की स्वार्थ रक्षा के लिये, झूठ का पर्दा तैयार करने मे रूजवेल्ट अरबों रुपया खर्च करेंगे, वही काम रूजवेल्ट के छोटे भाई बिड़ला, डालमिया के अखबार और उनकी दलाल काग्रेस सरकार कर रही है। यह आपको मालूम ही है कि भारत को औद्योगिक सहायता देने के लिये अमेरिका ने हिन्द सरकार के सामने, इस देश में मजदूर आन्दोलन, और समाजवादी प्रचार को रोकने की और देश के उद्योग-धन्धो के राष्ट्रीयकरण की बात न करने की शर्त रखी है। हमारी सरकार ने अमेरिका की शर्तों को स्वीकार किया है। इसे आप क्या कहेगे ? यह भारत की जनता की विचार स्वतंत्रता अमेरिका के हाथ बेच देना नही तो क्या है ? यह है रामराज की नैतिकता और सत्य-अहिंसा।"

कामरेड तीखे स्वर में बोल उठे, "पूंजीवादी शोषकों के लिये इस समय सचाई का प्रचार ही सबसे भयंकर वस्तु है। वह जनता को

केवल भूखे मरते रह कर, चुप रहने की ही व्यक्तिगत स्वतंत्रता दे सकते है और अपने लिये शोषण का अधिकार बनाये रखने की व्यक्तिगत स्वतंत्रता चाहते है। पूंजीवाद के इस अन्याय से बडी अनैतिकता और हिंसा क्या होगी !''

कामरेड से आँखें बचाकर सर्वोदयीजी ने भद्रपुरुष और जिज्ञासु को सम्बोधन कर कहा, ''अन्याय और हिंसा से, अन्याय और हिंसा का उपाय नहीं हो सकता। संघर्षालु विदेशी संस्कृति के जाल में फंस कर हम अपना अस्तित्व क्यों खो बैठें ! हम अपने अहिंसात्मक भारतीय साम्यवाद पर ही क्यो न दृढ रहे।''

''भारतीय समाजवाद से आपका अभिप्राय ?'' कामरेड ने चौंक कर पूछा, ''क्या रामराज का प्रपंच फीका पड़ जाने पर जनता को बहकाने के लिये कोई दूसरा प्रपंच सोचा जा रहा है ! यदि समाजवाद भारतीय और पश्चिमीय अलग-अलग हो तो भारतीय और पाश्चात्य आध्यात्म और अहिंसा भी अलग-अलग होनी चाहिये।''

इतिहासज्ञ फिर बोल उठे, ''समाजवाद को विदेशीय पश्चिमी संस्कृति कह कर जनता को बहकाने की चेष्टा अनैतिक और असत्य है। भाई सहब, योरुप और अमेरिका के पूँजीपति अपने देश की जनता को समझाते हैं कि समाजवादी संस्कृति एशिया की बर्बर संस्कृति है, पश्चिम के काम की चीज नही। आप समझाते है कि यह पश्चिम की संस्कृति है, भारत के काम की नही। देश में रेल चलाते समय, मिलें बनाते समय, बिजली लगाते समय पश्चिम के उदाहरण से सीखते भय नहीं लगा। यह पूँजीवाद का प्रजातन्त्रवाद कौन मनु महाराज या वेदव्यास का आविष्कार है ? यह आपने पश्चिम से सीखा है या नही ? यह पार्लियामेटरी शासन पश्चिम की चीज है या नही ? यदि आप जीवन के लिये आवश्यक पश्चिम में विकास पाये पैदावार के साधनो को अपनायेगे, तो आपके समाज का संगठन भी औद्योगिक व्यवस्था के अनुकूल होगा; वही कठिनाइया आपके सामने भी आयेंगी। उन कठि-

नाइयों का हल भी आपको उनके अनुभव से सीख लेने में संकोच नही करना चाहिये....''

सर्वोदयीजी ने असम्मति प्रकट करने के लिये अपना सिर जोर से हिलाया और बोले, "नहीं नही, हम अपनी आत्मा को पश्चिम के हाथ नही बेचेंगे। अपनी संस्कृति और नैतिकता खोकर अपने देश को सर्वनाश के गढ़े में नही गिरने देंगे। गीता में भगवान कृष्ण कह गये है कि मनुष्य को अपने ही धर्म में स्थित रहना चाहिये, पराया धर्म संकट का कारण होता है।''

कामरेड उत्तेजित होकर कुछ कहना चाहते थे पर वैज्ञानिक ने उनका हाथ थाम कर उत्तर दिया, "सर्वोदयीजी, आप चाहते है इगलैण्ड, अमेरिका अपनी संस्कृति और नैतिकता पर जमे रहें? रूस और चीन अपनी संस्कृति और नैतिकता पर डटे रहे और हम लौट कर अपनी रामराजी संस्कृति अपना लें और तीनों संस्कृतियो में संघर्ष चलता रहे?''

"नही नही," सर्वोदयीजी ने उत्साह से उत्तर दिया, "हमारी सत्य और अहिंसा की संस्कृति तो शान्ति का मार्ग दिखायेगी। संसार को उसे स्वीकार करना ही होगा, तभी संसार का कल्याण होगा। आपको याद है, पोलैण्ड पर हिटलर का आक्रमण होने पर बापू ने संदेश दिया था कि पोलैण्ड को हिटलर का सामना शस्त्र-शक्ति से नही, अहिंसा से और अत्याचार सह कर करना चाहिये। पोलैण्ड ने बापू की बात नही मानी। परिणाम हुआ कि पोलैण्ड हार गया। हमारी संस्कृति की सफलता निश्चित है।''

सर्वोदयीजी की बात से इतिहासज्ञ कुछ खीझ से गये और बोले, "मार्क्सवादी-समाजवादी विचारधारा का विकास पश्चिम मे होने के कारण, वह हमारे लिये उपयोगी नहीं है। गांधीवाद का स्रोत क्या है; यह भी आपको मालूम है। गांधी जी संस्कृत तो जानते नही थे। गीता भी पढ़ते थे तो अंग्रेजी अनुवाद से। गाधी जी ने अपने आपको कभी

मनु, व्यास शंकर का अनुयायी नहीं कहा। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण विचार-धारा ताल्सताय, एमर्सन और थोरे से ली है। उन्ही को वे अपना गुरु मानते थे। यह बात उन्होंने स्वीकार भी की है। गांधीवाद का मूल मंत्र है 'हिंसा का प्रतिकार शक्ति से नहीं करना चाहिये' (रजिस्ट नाट द ईवल)। यह मंत्र गीता, वेद और आर्य स्मृतियों का नहीं, बाइबिल का है। शूद्रक ने तपस्या के अधिकार का दावा किया था तो राम ने सत्याग्रह से उसका हृदय परिवर्तन नही किया, तलवार से उसका सिर काट डाला। कौरवों ने पाण्डवों का राज छीन लिया तो भगवान कृष्ण ने युधिष्ठिर और अर्जुन को सत्याग्रह आन्दोलन करने की राय न देकर, कुरुक्षेत्र में युद्ध करने ही राय दी। सत्याग्रह का ऐतिहासिक उदाहरण आपको मिलता है, रोम के आत्याचारी राजाओं के मुकाबले ईसाई साधुओं के व्यवहार में। अब आप बताइये, गांधीवाद को भारतीय सस्कृति कैसे माना जा सकता है ?"

वैज्ञानिक ऊब कर उठ खड़े हुये और हाथ जोड़ कर बोले, "महाराज, यदि जीवन मे सफलता, उन्नत संस्कृति और नैतिकता की कसौटी है तो संसार का लगभग तिहाई भाग बहुत ही थोड़े समय मे, समाजवादी संस्कृति और नैतिकता को अपना चुका है। रामराजी, राजसत्तात्मक तथा सम्पत्ति के अधिकार पर आश्रित सस्कृति और नैतिकता संसार से सिमिटती ही जा रही है। यह हमारी बुद्धि पर निर्भर करता है कि हम किस संस्कृति को स्वीकार करेंगे। समाजवाद आपको पतलून पहनकर पश्चिमी संस्कृति अपनाने के लिये बाध्य नही करता। वह तो समाज की एक आर्थिक प्रणाली मात्र है, जो समाज के सब व्यक्तियों के लिये जीवन के समान अवसर और जनवादी नैतिकता का अनुमोदन करती है....."

सब लोग उठ गये परन्तु सर्वोदयीजी ने बैठे-बैठे ही अपनी बात अंत में कह दी, "इसका निर्णय तो अत में एक दिन भगवान ही अवतार लेकर, संसार से पाप का नाश करके करेंगे !"

५

राम-राज का प्रजातंत्र और मज़दूर तानाशाही

चक्कर क्लब में सृष्टि के उद्भव और मनुष्य-समाज के इतिहास की चर्चा होती है, वादो और सिद्धान्तो की उधेडबुन भी बहुत होती है परन्तु चक्कर क्लब के सदस्य समाज के सर्व-साधारण लोगो को अनुभव होने वाली कठिनाइयो और उनकी समस्याओं से मुक्त नही है। शारीरिक परिश्रम का अवसर न आने से, बड़े लोग शरीर शिथिल अनुभव होने पर, टैनिस या पोलो खेल कर शरीर को थकाना और शरीर से कुछ पसीना बहा देना आवश्यक समझते हैं। बडे लोगो के दिमाग़ भी कभी-कभी आलस्य की अंगड़ाइयाँ लेने लगते है। तब वे स्फूर्ति के लिये राजनीति, आर्थिक विधान, आस्तिकता-नास्तिकता पर बहस करने लगते हैं। उनकी बहस उदार होती है। बहस करने वाले उदाराशयो की बहस का उनके जीवन से कोई सम्बन्ध नही होता। वे नितान्त तटस्थ होकर, अपने व्यक्तिगत प्रश्न और स्वार्थ को परे रख कर, बात कर सकते हैं।

चक्कर क्लब नित्य जीवन की समस्याओ से पिसे हुये लोगों का समुदाय है, इसलिये यहाँ अन्तरर्राष्ट्रीय राजनीति की बहस भी व्यक्तिगत स्वार्थ से प्रभावित रहती है और व्यक्तिगत समस्याओ का विवेचन भी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का आधार बन जाता है। ऐसा भी होता है कि लोग व्यक्तिगत और घरेलू समस्या से झुंझलाकर

अपना दुख बटाने के लिये ही यहाँ आ बैठते हैं और बडी-बडी बातों मे अपनी छोटी-छोटी चिन्तायें भुला देना चाहते हैं।

उस दिन भद्र पुरुष कुछ ऐसी ही परिस्थिति मे आये और अपने भतीजे को यूनिवर्सिटी मे शिक्षा दिला सकने की सम्भावनाओं की चर्चा करने लगे। संक्षेप मे उन्होने बताया कि उनका भतीजा बहुत ही प्रतिभाशाली और परिश्रमी था। उसने मैट्रिक में अपने स्कूल में प्रथम रह कर वजीफा भी पाया था। वह इंटर मे भी जरूर प्रथम आता लेकिन उसे परीक्षा की तैयारी का समय ही नही मिला। पिछले वर्ष भद्रपुरुष के भाई की अकाल मृत्यु हो जाने से, लड़के के सिर पर घर का खर्च चलाने का बोझ भी आ पड़ा था। भद्रपुरुष के भाई किसी कम्पनी में पचास रुपये माहवार पर मुंशी थे। लड़के की हिम्मत और योग्यता इतनी थी कि दो-दो ट्यूशने पढ़ाकर भी, वह पहले डिवीज़न मे पास हो गया था। प्रश्न था कि अब क्या किया जाये? यदि लड़का आगे नहीं पढता, तो केवल चालीस-पचास रुपये का मुंशी हो कर रह जायगा या हाज़मे और ताकत की गोलियां बनाने वालों की गोलियाँ एक बेग में भर कर रेलगाड़ियों में वेचता फिरेगा। पिछले वर्षों से अत्याधिक परिश्रम करने से वह कुछ कमज़ोर भी हो गया था। उसका पेट खराब रहने लगा था। घर पर उसकी माँ, एक छोटा भाई और एक बहिन भी थी। ट्यूशन से वह कितना कमा सकता था! आगे यूनिवर्सिटी की पढाई का बोझ होगा। सोचिये, आखिर कितना परिश्रम कर सकेगा!

भद्रपुरुष की आँखों में अपने असामर्थ्य और भाग्य के प्रति क्रोध से आँसू आ रहे थे। वे स्कूल मे मास्टर हैं। महंगाई भत्ता मिला कर उन्हें एक सौ रुपया बन जाता है। एक ट्यूशन भी करते हैं। घर पर उनकी माँ है, उनके बच्चो की माँ है और बच्चे। भगवान की दया से चालीस वर्ष की आयु में, पाँच तो हैं ही, और शीघ्र ही प्रसूता के लिये लम्बे-चौड़े खर्च की समस्या आने वाली है। खैर, यह तो भगवान

की इच्छा की बात है। इस ज़माने में जब आटा रुपये का दो सेर, दूध दो सेर भी नही और घी अढ़ाई छटाक ही पर सौ सवा सौ कमाने वाले परिवार मे घी खाता ही कौन है !....बताइये, प्रति व्यक्ति पन्द्रह रुपये मासिक मे क्या निर्वाह चल सकता है ? स्कूल मास्टर को सफेद-पोशी की मर्यादा भी निबाहना है।.....व अपने भतीजे को क्या सहायता कर सकते है ? न करें तो कैसे ? लडके का जीवन मिट्टी मे मिल जाने दे ? लडके को अवसर मिले तो वह क्या नही बन सकता ?

भद्रपुरुष के दुख से द्रवित होकर पहले सर्वोदयीजी ही बोले। उन्होने हाथ से छत की ओर संकेत कर कहा, "वही सब करने वाला है।"

कामरेड ने भी हाथ से छत की ओर संकेत कर कहा, "उसी ने तो लडके के बाप को उठा लिया और भद्रपुरुष बेचारे के घर को पन्द्रह रुपये मासिक प्रति व्यक्ति दे रहा है।"

"हाँ और क्या !" अधीर स्वर मे भद्रपुरुष ने स्वीकार किया।

सर्वोदयीजी ने भद्रपुरुष को ढाढ़स बंधाया, "घबराइये नही। 'उसी' पर विश्वास रखिये। 'वह' पत्थर में बन्द कीड़े का भी पेट भरता है। जाने किसके मन मे 'वह' दया उत्पन्न करदे और लडके की शिक्षा का प्रबन्ध हो जाये या लड़के को अच्छी ट्यूशने ही मिल जायें।"

कामरेड फिर बोले, "क्यों साहब, लडका किसी के आगे हाथ क्यों पसारे ?"

मौजी कुछ आदमियों के नाम गिनाने लगे, जिनके यहाँ ट्यूशन मिल सकने की सम्भावना हो सकती थी परन्तु मार्क्सवादी बोले, "यह भी तो सोचिये कि मनुष्य के लिये उचित परिश्रम की एक सीमा होती है। उससे अधिक परिश्रम करने का अर्थ जीवन की शक्ति को शीघ्र समाप्त कर देना होता है। दिये में एक बत्ती जलाने और तीन बत्ती जला देने से कुछ फरक पड़ेगा या नही ? आमदनी पर्याप्त न होने से लड़का उचित पौष्टिक भोजन तो पा नही सकेगा और मेहनत करेगा

मुनासिब से बहुत ज्यादा। आप दिये मे बहुत कम तेल डाल कर तीन-चार बत्तियाँ जला दीजिये और पेंदी में एक छेद भी कर दीजिये तो क्या होगा ?"

भद्रपुरुष को वैज्ञानिक ने सम्बोधन किया, "भाई साहब, बुरा न मानियेगा जैसे आपके भतीजे की समस्या वैसी मेरे लड़के की और हम जैसे सभी लोगों की सन्तान की समस्या है। उसका भाग्य यह होगा कि लड़का जान की बाज़ी लगा कर एम० ए० पास कर लेगा। एम० ए० हो जायगा फिर भूखे पेट नौकरी के लिये भटकेगा। तब तक उसे दिक हो जाय, दमा हो जाय, अत्यधिक परिश्रम के बोझ से आँतडियाँ निर्बल होकर सदा के लिये पेट का रोगी हो जाय। अरे भाई, उनका स्वर ऊँचा हो गया, "पूँजीवादी समाज और सरकार नही चाहती कि हमारे बच्चे पढ़े। क्या जरूरत है इस समाज और इसकी सरकार को कि हमारे-तुम्हारे बच्चे बहुत अधिक पढ़-लिख कर लायक हों! खुद बड़े आदमियों की औलाद के लिये ही काफी नौकरियाँ और पेशे नहीं है, न कारोबार में ही गुजाइश है। इस समाज को अफसर और मालिक नहीं चाहिये। अफ़सर और मालिक बहुत हैं। जरूरत है, नौकरों और मज़दूरों की। अफ़सर और मालिक बढ़ेगे तो क्या होगा ? अफ़सरों की रोज़ी और मालिकों का मुनाफा कम होगा। वे लोग ऐसा क्यों होने दे ? मजदूर और नौकर बढ़ेगे तो क्या होगा ? बेकार नौकर और मज़दूर कम तनख्वाह और मजदूरी पर काम करने के लिये मिलेंगे। मालिक और अफसर लोगो का फायदा इसी में है इसलिये पूँजीवादी समाज और उसकी सरकार शिक्षा की व्यवस्था ऐसी करती है कि केवल बडे आदमियों के लडको के लिये शिक्षा का खूब अच्छा प्रबन्ध हो सके। हम-तुम लोगों के लड़को को शिक्षा से दूर रखने के लिये सीधा तरीका है कि शिक्षा का खर्च बढ़ाते जाइये और साथ-साथ यह भी कहते जाइये कि जनता और देश की सन्तान के लिये शिक्षा का प्रबन्ध है, शिक्षा का दरवाज़ा सब के लिये समान रूप से खुला है

लेकिन शिक्षा का दरवाजा इतनी ऊँचाई पर बनाइये कि रुपये की लम्बी सीढ़ी लगा कर, वहाँ तक चढ़ने का अवसर केवल बड़े आदमियों के लड़के ही पा सकें।"

"आप समाज और सरकार को गाली दे रहे हैं," सर्वोदयीजी ने पूछा, "क्या आप समाज नहीं है। क्या जनता की सरकार आपकी सरकार नही है?"

"हम समाज का अंग अवश्य हैं परन्तु हम पराधीन है।" कामरेड ने उत्तर दिया, "हम लाग केवल पूजीपति श्रेणी के उपयोग के लिये है। सरकार जनता की नहीं है। सरकार तो समझती है कि जनता सरकार की है। जनता का कर्त्तव्य है कि खेती पर लगान दे, जो चीज़ खरीदे उस पर 'खरीद कर' भरे। सरकार का खर्च चलाये, सरकार का हुक्म मानें, सरकार की जय पुकारें परन्तु जनता के लिये कोई अवसर नहीं, पूंजीपति अमीरों के लिये सब कुछ है। साधनहीन गरीब मजदूरों, भूमिहीन या कम भूमि वाले किसानों के लिये कुछ नही। केवल एक भद्रपुरुष जी का ही भतीजा तो शिक्षा न पा सकने के कारण, जीवन में अवसर नहीं खो रहा है। लाखों-करोड़ों व्यक्ति ऐसे है जो शिक्षा नही पा सकते। लाखों करोडों बीमार हैं जो दवाई नहीं पा सकते। कितने बेकार हैं जो मजदूरी नहीं पा सकते। कोई सहायता दे देगा और भद्रपुरुष जी का भतीजा बी० ए० पास कर लेगा। सहायता मांगने वाले करोड़ों और दे सकने वाले हजार पाँच सौ हों तो देश का काम कैसे चलेगा? लाखों तो साक्षर हो सकने का भी अवसर नही पा सकते....."

बगल में बैठे कांग्रेसीजी ने कामरेड के मुख के सामने हाथ कर उन्हें चुप करा दिया और बोल उठे, "यह आप गलत बात कह रहे हैं। काग्रेस सरकार ने प्राइमरी-शिक्षा मुफ्त कर दी है और अनिवार्य भी। अब अगर कोई न पढ़े तो सरकार का क्या कसूर है?"

भद्रपुरुष अपना दुख भूल कर बोल उठे, "हाँ, शिक्षा अनिवार्य कर दी है; इसीलिये सरकार स्कूल मास्टरों को चपरासी से भी कम तनखाह

देती है। अजी सुनिये, हमारे पडोस में चुन्नी बेवा रहती है। उसका नौ बरस का लड़का है। दोनों रेल की लाइन पर कोयला चुनने जाते है तो दिन भर मे बारह आने कमा लाते है। लडके को अनिवार्य शिक्षा पाने के लिये स्कूल भेज दें तो छः आना ही रोज रह जायगा। वह क्या अपने और लड़के के पेट मे घास भरेगी ! साहब सुना है, जो लोग अपने बच्चों को स्कूल नही भेजेगे उन्हें सरकार सजा देगी···· ···"

कामरेड उबल उठे, "सरकार सज़ा ही देगी, चुन्नी को रोटी कमाने के लिये मजदूरी नही देगी। यह अच्छा रहा, मजदूरी देना रहा पूजीपति के हाथ और सजा देना सरकार के हाथ। भैया, पूँजीपति श्रेणी का राज है। पूजीपति की औलाद के लिये सब सुविधा है। मजदूर श्रेणी का राज होगा तो मजदूर की संतान के लिये भी सुविधायें हो जायंगी, जैसे समाजवादी देशों मे है।"

कामरेड को चुप कराने के लिये अपना हाथ भगवान बुद्ध की शान्त मुद्रा मे उठाकर सर्वोदयीजी ने समझाया, "प्रत्येक बात मे श्रेणी संघर्ष और हिंसा की बात करने और सरकार को गाली देने से क्या लाभ ! इससे अपना ही मन अशान्त होता है। आप मनुष्य के ऊपर, भगवान के न्याय और विधान को क्यों भूल जाते है। मनुष्य के कर्मफल की बात क्यों भूल जाते है। हमारे पिछले जन्म के भी तो कर्म है·····"

वैज्ञानिक ने अपने स्थान से आगे बढ़ सर्वोदयीजी के मुँह के आगे हाथ कर उन्हें चुप करा दिया और सहसा भद्रपुरुष को सम्बोधन कर बैठे, "बताइये, आपके किस कर्म का फल है कि आपका भतीजा शिक्षा पाने का अवसर नही पा रहा; आपके सम्पूर्ण परिवार को अपर्याप्त भोजन से क्यो निर्वाह करना पड़ रहा है।"

"भाई मुझे क्या मालूम, मैं तो नही जानता।" भद्रपुरुष ने विवशता में हाथ फैला कर उत्तर दिया, "जाने कब कौन जन्म हुआ था और किसने क्या कर्म किये होंगे ?"

देती है। अजी सुनिये, हमारे पडोस में चुन्नी बेवा रहती है। उसका नौ बरस का लडका है। दोनो रेल की लाइन पर कोयला चुनने जाते है तो दिन भर में बारह आने कमा लाते है। लडके को अनिवार्य शिक्षा पाने के लिये स्कूल भेज दे तो छ आना ही रोज रह जायगा। वह क्या अपने और लड़के के पेट मे घास भरेगी ! साहब सुना है, जो लोग अपने बच्चो को स्कूल नही भेजेगे उन्हे सरकार सजा देगी……"

कामरेड उबल उठे, "सरकार सज़ा ही देगी, चुन्नी को रोटी कमाने के लिये मजदूरी नही देगी। यह अच्छा रहा, मजदूरी देना रहा पूजीपति के हाथ और सजा देना सरकार के हाथ। भैया, पूँजीपति श्रेणी का राज है। पूजीपति की औलाद के लिये सब सुविधा है। मजदूर श्रेणी का राज होगा तो मजदूर की संतान के लिये भी सुविधायें हो जायंगी, जैसे समाजवादी देशो मे है।"

कामरेड को चुप कराने के लिये अपना हाथ भगवान बुद्ध की शान्त मुद्रा मे उठाकर सर्वोदयीजी ने समझाया, "प्रत्येक बात मे श्रेणी संघर्ष और हिंसा की बात करने और सरकार को गाली देने से क्या लाभ ! इससे अपना ही मन अशान्त होता है। आप मनुष्य के ऊपर, भगवान के न्याय और विधान को क्यो भूल जाते है। मनुष्य के कर्मफल की बात क्यो भूल जाते है। हमारे पिछले जन्म के भी तो कर्म है……"

वैज्ञानिक ने अपने स्थान से आगे बढ़ सर्वोदयीजी के मुँह के आगे हाथ कर उन्हें चुप करा दिया और सहसा भद्रपुरुष को सम्बोधन कर बैठे, "बताइये, आपके किस कर्म का फल है कि आपका भतीजा शिक्षा पाने का अवसर नही पा रहा; आपके सम्पूर्ण परिवार को अपर्याप्त भोजन से क्यो निर्वाह करना पड़ रहा है।"

"भाई मुझे क्या मालूम, मै तो नही जानता।" भद्रपुरुष ने विवशता मे हाथ फैला कर उत्तर दिया, "जाने कब कौन जन्म हुआ था और किसने क्या कर्म किये होगे ?"

"क्यो नही मालूम ?" अपना स्वर तेज कर वैज्ञानिक ने प्रश्न किया, "भगवान ने आपको बताया नही ?"

"नही तो" भद्रपुरुष और भी सकपका गये, "भगवान कब किसको बताते है। हमें तो किसी ने नही बताया।"

"तो आप सर्वोदयीजी से पूछ लीजिये !" वैज्ञानिक ने राय दी।

"हम क्या परलोक जानते है ? हम क्या बता सकते है ?" सर्वोदयी जी ने विरोध किया।

वैज्ञानिक ने सर्वोदयीजी की ओर देखा—"सुनिये भगवन, अगर यह मास्टर साहब किसी लडके का अपराध बताये बिना चार चाटे लगा दें तो कोहराम मच जायगा परन्तु आपके दयालु-न्यायकारी भगवान किसी को भी कारण बताये बिना, लाखो आदमियो को तपेदिक कर देते है, भूखा रखते है, अनपढ़ रखते है और क्या-क्या नही करते। आपको इस पर कोई आपत्ति नही है ?"

बीच में मार्क्सवादी बोल उठे, "ठीक है, और क्योंकि आजकल सत्य-अहिंसा के पुजारियो और ईश्वर भक्तों[1] की सरकार का राज है इसलिये यह सरकार भी लोगों को उनका अपराध बताये बिना, उनका अपराध अदालत में प्रमाणित किये बिना सज़ा देती है।"[2]

---

१. सन १९४८ में सोशलिस्ट पार्टी के उम्मीदवारों को वोट न देकर, काग्रेस के ही उम्मीदवारो को वोट देने के लिये, जनता से अपील करते हुये श्री गोविन्दबल्लभ पंत ने जनता को समझाया था कि आप सोशलिस्टों पर कैसे भरोसा कर सकते है ! सोशलिस्ट तो भगवान को भी नही मानते !

२. शान्ति सुरक्षा कानून के अनुसार व्यक्ति का अपराध बताये और अदालत में प्रमाणित किये बिना उसे जेल में रखा जा सकता है। लेखक फरवरी १९४९ मे स्वयं भुगत चुका है।

सर्वोदयीजी ने मार्क्सवादी की बात का कोई उत्तर न देकर भद्रपुरुष को सान्त्वना देने के लिये कहा, "यदि आप ईश्वर के विधान और न्याय पर भरोसा नही करेंगे तो आपके पास इस बात का क्या उत्तर है कि कोई आदमी सब सुविधायें लेकर पैदा होता है और कोई जीवन में कुछ भी सुविधा नही पा सकता। जहाँ मनुष्य का ज्ञान काम नही करता, वहाँ तो आपको ईश्वर का विधान मानना ही पड़ेगा, क्यो ?"

भद्रपुरुष, जिज्ञासु और मौजी इस तर्क को गंभीरता से सुन रहे थे परन्तु इतिहासज्ञ बोल पड़े, "जहाँ मनुष्य का ज्ञान काम नही करता वही भगवान है। इसका अर्थ हुआ कि मनुष्य का अज्ञान और उसकी मूर्खता ही भगवान है।"

सर्वोदयीजी ने खिन्न होकर सिर हिला दिया। विरोध में मौन रह गये।

कांग्रेसी भाई अपने स्थूल पेट को हिलाकर बोले, "हाँ, आप तो ज्ञानी है न; आप ही बताइये, क्यो कोई धनवान पैदा होता है और कोई निर्धन ?"

मार्क्सवादी बीच में टोक बैठे, "क्या भगवान के विधान से यह आवश्यक है कि कोई धनी और कोई निर्धन पैदा हो ?"

"होता है।" सर्वोदयीजी मौन न रह सके, "जब होता है तो भगवान का विधान नही मानियेगा। या आप कह दीजियेगा, कि ऐसा नही होता।" अपनी युक्ति की प्रबलता प्रकट करने के लिये उन्होंने ज़ोर से हाथ फर्श पर पटक दिया।

मार्क्सवादी ने दोनों हाथ जोड़ कर विनीत स्वर में उत्तर दिया, "महात्मा जी, ऐसा अन्याय भगवान की इच्छा से नही होता। क्या भगवान चाहते है कि लोग बेकारी और भूख से मरें, बीमरियों से मक्खियों की तरह मर-मर कर गिरे, शिक्षा का अवसर न होने से अशिक्षित रहें ? भगवान यदि न्यायकारी और दयालु हैं तो वे निश्चय सब के लिये समान अवसर चाहते हैं। यह अन्याय होता है पूँजीवादी

समाज की व्यवस्था के दोष से। पीड़ित लोग इस अन्याय के विरुद्ध आवाज न उठाये इसलिये आप इस अन्याय को भगवान की इच्छा बता देते है। यदि भगवान है तो उनकी इच्छा से अब रूस के समाजवादी शासन-व्यवस्था मे लोग पिछले जन्म के कर्मफल के कारण, साधनहीन और अवसरहीन अवस्था मे जन्म क्यों नही लेते ? पूँजीपतियो के स्वार्थ को भगवान का न्याय बता देना बड़ा भारी पाप है। रूस चीन में अब पूँजीवादी भगवान का विधान नही चलता। वहाँ पैदा होने वाले लोगो के लिये समान सुविधा और अवसर रहता है। वहाँ पूँजीपतियो के भगवान का राज नही मज़दूरों के भगवान का राज है।"

मार्क्सवादी की बात का प्रभाव न जमने देने के लिये कांग्रेसी भाई बोल उठे, "आपके विचार मे भद्रपुरुष जी के भतीजे की शिक्षा की समस्या हल करने के लिये उपाय यह है कि श्रेणी संघर्ष चलाकर पहले इस देश मे मजदूर तानाशाही कायम हो जाय, तब तक वह लड़का प्रतीक्षा करता रहे।"

कांग्रेसी भाई के इस मजाक से कामरेड निरुत्तर नही हुये और दृढ़ निश्चय का घूसा उठाकर और आखो मे गहरे असतोष की चिनगारी चमका कर बोले, "आज आप चाहें तो साधनहीन श्रेणी के प्रयत्नो का मजाक उड़ा सकते है लेकिन मज़दूर भद्रपुरुष के भतीजे को बैठ कर, मजदूर शासन कायम हो जाने की प्रतीक्षा करने की सलाह नही देते। मजदूर भद्रपुरुष के भतीजे को समझाना चाहते है कि यह केवल तुम्हारी व्यक्तिगत समस्या नही है। इसके लिये तुम सम्पूर्ण साधनहीन श्रेणी के साथ मिलकर, अपने प्रति अन्याय करने वाली व्यवस्था का अन्त करने की चेष्टा करो !"

कांग्रेसीजी ने परेशान हो जाने के भाव से हाथ फैला कर और सहानुभूति से भद्रपुरुष की ओर देख कर कहा, "लीजिये साहब, लड़के की जिन्दगी बनने-बिगाड़ने का प्रश्न तो आज है और यह समस्या के फैसले की तारीख डाल रहे है मजदूर तानाशाही कायम होने के बाद।"

कामरेड को निरुत्तर कर देने के विश्वास में काग्रेंसी जोर से हँस दिये ।

इतिहासज्ञ ने एक सिगरेट सुलगा लिया था, लम्बा कश खीच कर वे बोले, "भाई साहब सुनिये, आप प्रभावशाली आदमी है । सम्भव है आपकी सिफारिश से भद्र पुरुष के भतीजे का कुछ प्रबन्ध हो जाये । सुना है, बिडला जी, डालमिया जी और टाटा साहब गरीब लोगो को सहायतार्थ वजीफे भी देते है परन्तु ऐसे कितने आदमियो की समस्या हल हो सकेगी ? क्यों दें वे वजीफे और कोई मागे क्यो ? प्रश्न है कि समाज में सभी के लिये शिक्षा और जीविका पाने का समान अवसर क्यो न हो ! यदि ऐसा नही होता तो यह भद्रपुरुष के भतीजे पर ही नही बल्कि सर्व-साधारण पर अन्याय है । ऐसे प्रश्नो को व्यक्तिगत रूप से नही, सामाजिक रूप से ही सोचा जाना चाहिये ।"

उनके मुँह की बात मार्क्सवादी ने ले ली, "भद्रपुरुष के भतीजे की समस्या केवल उनकी व्यक्तिगत परिस्थितियों के कारण नही है....."

जिज्ञासु ने टोक दिया, "इनकी व्यक्तिगत परिस्थिति के कारण नही है तो किस कारण है ।"

मार्क्सवादी ने जोर से उत्तर दिया, "इनके भतीजे की समस्या, पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा पैदा हो गयी आर्थिक परिस्थिति के कारण है । इस समस्या का हल व्यक्तिगत रूप से ढूँढ़ने का अर्थ, इस व्यवस्था में गुंजाइशे ढूँढना है । इसे अपने लिये सह्य बनाना है । यह सम्पूर्ण शोषित सर्व-साधारण को भुला देने और एक व्यक्ति, जो असंतोष प्रकट कर रहा है, उसे किसी तरह टुकडा डाल कर चुप करा देने की कोशिश करना है । शहर में बीमारी फैलने पर आप एक-एक आदमी का इलाज करते जाय और बीमारी के कारण को शहर से दूर न करें, यह तो अक्लमन्दी नही होगी । ऐसे ही अपनी शक्ति, व्यक्तिगत रूप से किसी एक आदमी की आर्थिक उलझन सुलझाने में न लगाकर; विषम व्यवस्था को बदलने का यत्न करना चाहिये । पूँजीवादी व्यवस्था और मौजूदा

सरकार की शासन-व्यवस्था मे इस समस्या का हल हो ही नही सकता। यह समस्याये इस व्यवस्था का ही तो परिणाम है। जिन समस्याओ में पूंजीपति श्रेणी का भी स्वार्थ है, उन्हे तो पूंजीपति समाज सामाजिक रूप से हल करना चाहता है, उदाहरणतः नगर मे बीमारी फैलना, चोरी डकैती होना आदि। जिन समस्याओ अर्थात् बेकारी और अवसर की कमी आदि मे केवल गरीबो का मरन है, उन्हे आप व्यक्तिगत प्रश्न बना कर छोड़ देते है ? यह सरकार का पूंजीवादी दृष्टिकोण नही तो क्या है ?''

काग्रेसीजी खिन्न स्वर मे बोले, ''आप हर बात मे सरकार पर लाकर तान तोडते है। काग्रेसी सरकार बने अभी जुम्मा-जुम्मा सात दिन तो हुये नही। आपने काग्रेसी सरकार को कुछ करने का अवसर ही कब दिया है ? रूस की आप बड़ी तारीफ करते है परन्तु उन्हे जमे बत्तीस बरस भी तो हो गये है।''

''कांग्रेस सरकार को भी तो भाई साहब तीन बरस हो ही गये। तीन बरस मे इतना तो पता चल गया कि काग्रेस सरकार चल किस राह पर रही है।'' वैज्ञानिक बोले।

''कांग्रेस सरकार बिलकुल जनता का राज कायम करने की राह पर चल रही है। देखिये, पंचायत राज !'' काग्रेसी जी ने सुझाया।

मार्क्सवादी बोले, ''पहली बात तो यह है कि पंचायत राज चल कहीं नहीं रहा, वह है दिलबहलावे का तमाशा। आप यह बताइये कि पंचायते यह निश्चय कर सकती है कि लगान कितना हो ? जमीन का बटवारा कैसे हो ? पैदावार कितनी हो और कैसे हो ? मजदूरी कितनी हो ? क्या खेतों को और कारखानो को पंचायतो के अधिकार मे लिया जा सकता है ?''

''पंचायत कुछ भी नही कर सकती। बस यह फैसला कर सकती है कि औरत भगाने वाले को कितने जूते लगे या गाव मे साझी संडास बना ली जाये। पूंजीपति सरकार ने सम्पत्ति की रक्षा के लिये जो

नियम बनाये है, पचायत उनकी चौकसी कर सकती है। आर्थिक व्यवस्था को तो केन्द्र और प्रान्त की गद्दी पर कब्जा करके पूँजीपति अपने हाथ मे सुरक्षित रखे है। आप पंचायत मे बैठ कर हुक्का घुमाया कीजिये।''

काग्रेसीजी ने प्रश्न किया, ''आप काग्रेसी सरकार को पूँजीवादी सरकार कैसे कह सकते है ? काग्रेस तो पूँजीपतियो की संस्था न है, न थी। क्या कांग्रेस मे केवल पूँजीपति ही रहे है ? अरे भाई पूँजीपति एक रहा तो हजार सर्व-साधारण लोग भी रहे। काग्रेसी सरकार को हम पूँजीवादी सरकार कैसे मान लें ?''

''यह बात ठीक है'' इतिहासज्ञ ने स्वीकार किया, 'कि काग्रेस में सर्व-साधारण की अपेक्षा पूँजीपतियों की संख्या कम है परन्तु काग्रेस की नीति तो पूँजीपति श्रेणी के दृष्टिकोण से ही निश्चित होती रही है। जनता की शक्ति का उपयोग, काग्रेस ने पूँजीपतियों का स्वार्थ सिद्ध करने के लिये किया है। स्वराज्य के लिये लडी जनता और शासन का अधिकार सम्भाल लिया पूँजीपति श्रेणी ने।''

सर्वोदयीजी विरोध में सिर हिलाकर बोले, ''यह कोई कैसे मान सकता है। काग्रेस तो देश के गरीबो की ही प्रतिनिधि है और विशेष कर बापू के नेतृत्व में चलने वाली काग्रेस तो पूंजीपतियो के हाथ की चीज हो ही नही सकती थी। बापू तो दरिद्र-नारायण के पुजारी थे।''

''गाधी जी के प्रभाव और गाधीवाद की राह से ही तो काग्रेस पूजीपतियो की स्वार्थ साधना का साधन बनती रही।'' मार्क्सवादी उत्तेजित होकर बोले, ''गाधी जी ने सदा ही पूँजीपति श्रेणी के हित की रक्षा के लिये, इस देश के राजनैतिक स्वतंत्रता के आन्दोलन को क्रांति के मार्ग से हटाकर, इसे ब्रिटिश पूँजीवाद से समझौते का ही आन्दोलन बनाये रखा था। गांधी जी ने जब भी क्रांति की सम्भावना सामने देखी, आन्दोलन को स्थगित कर दिया। गाधी जी के सामने सदा ही यह आशंका बनी रही कि ब्रिटिश पूँजीवादी शासन को उखाड़ फेंकने वाली

क्राति, कही भारत में पूजीवाद को भी निर्मूल न कर दे। पूंजीवादी व्यवस्था पर आक्रमण ही गाधी जी की दृष्टि में सब से बडी हिंसा थी। मालिक के अधिकार की प्रतिष्ठा ही गाँधी जी के रामराज्य का आदर्श था।''

''इस से बडा झूठ और क्या हो सकता है ?'' सर्वोदयीजी चिल्ला उठे, ''इससे बडी कृतघ्नता और क्या होगी ? दुनियाँ जानती है कि बापू ने ही इस देश को स्वतंत्र किया। काग्रेस आन्दोलन ने ही इस देश की राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त की। यह कामरेड जो युद्ध के जमाने में ब्रिटिश सरकार की बगल मे जा घुसे थे, आज देश की स्वतंत्रता के समर्थक बन रहे हैं और बापू पर ब्रिटिश सरकार के सहायक होने का आरोप लगा रहे है ? इतने बड़े असत्य को सहन करना सम्भव नही ?'' सर्वोदयीजी के नेत्र लाल हो गये। उत्तेजना मे उनके हाथ इतने वेग से चल रहे थे कि यदि कोई जीव उनकी पहुँच में आ जाता तो उसकी हिसा हो जाने की पूर्ण आशंका थी।

जिज्ञासु और भद्रपुरुष ने बीच-बचाव किया, ''सुनिये, सुनिये ! कामरेड निश्चय ही गम्भीर आरोप लगा रहे है और उसका उत्तर आप गम्भीरता से दीजिये। गाधीवाद ने ब्रिटिश साम्राज्यशाही का हृदय परिवर्तन करके, रक्तपात रहित क्रान्ति से भारत का राज्य ले लिया है तो आप कामरेडो का भी हृदय परिवर्तन क्यो नहीं कर सकते ? यह लोग अपना और अपनी श्रेणी का भला ही तो चाहते है। इन्हें यदि मार्क्स और रूस की बात समझ में आ सकती है तो आपकी बात भी समझ सकेंगे। आप इन्हें केवल हिंसा का ही पुजारी क्यों मान बैठे है !''

''जनाब, हम तो प्रमाण देकर बात करते हैं'', मार्क्सवादी ने सीना फैला कर चुनौती दी, ''गाधी जी ने १९२२ फरवरी के 'यग इण्डिया' में अपने लेख 'डाक्टरिन आफ स्वोर्ड' (तलवार का मार्ग) मे स्वयं स्वीकार किया है कि स्वराज्य प्राप्ति के लिये हमने यदि तलवार का मार्ग लिया होता तो हमें शायद उतनी कुर्बानिया न करनी पड़ती जितनी कि अहिंसा

के मार्ग पर चल कर ब्रिटिश दमन के सामने देनी पड़ी। याद रखिये, यह बात सन् २२ की है अर्थात गांधी जी सीधी क्रान्ति से सन २२ मे ही स्वराज्य पा लेना संभव समझते थे। फिर सन ४७ तक हमे गुलामी में क्यो सड़ाया गया ? उन्होने अपने लेख 'भाई सारोज' (मेरे संताप) यंग इण्डिया फरवरी २३, १९२२ मे स्पष्ट लिखा है, "भारत की स्वतंत्रता से अधिक महत्व मेरे लिये अपनी मुक्ति का है। मै पहले हिन्दू हूं और देशभक्त बाद मे। इन बातो का आप क्या अभिप्राय समझते है ? हमने निर्णय आप ही पर छोडा।" उन्होने चारो ओर बैठे लोगो को सम्बोधन कर उत्तर मागा।

शेष लोगों को विचार मे मौन देख कर सर्वोदयीजी ने वितृष्णा के स्वर मे उत्तर दिया, "इसका क्या मतलब हुआ ? इसका मतलब तो यह है कि बापू इस देश की भौतिक स्वतंत्रता की अपेक्षा अपनी और इस देश की आध्यात्मिक स्वतंत्रता को अधिक महत्व देते थे।"

"हाँ, यह तो ठीक है" भद्रपुरुष ने समर्थन किया।

"परन्तु आध्यात्मिक स्वतंत्रता का देश की राजनैतिक स्वतंत्रता से क्या सम्बन्ध ? काग्रेस न तो आध्यात्मिक संस्था थी, न धार्मिक संस्था।" जिज्ञासु ने प्रश्न किया, "आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वास का प्रश्न व्यक्तिगत या साम्प्रदायिक होना चाहिये। देश भर के आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वास तो न एक जैसे हैं, न तब थे।"

"और फिर गांधी जी ने यह भी तो कहा है कि मैं हिन्दू पहले हूँ।" जिज्ञासु को सुझाने के लिये वैज्ञानिक बोले, "क्या देश की सम्पूर्ण जनता, राजनैतिक और आर्थिक आजादी से अधिक महत्व हिन्दू सम्प्रदाय की मुक्ति की कल्पना को दे सकती थी ?"

"यह तो आप मानियेगा।" मार्क्सवादी बोले, "गांधी जी ने देश के स्वाभाविक गति से चलते राजनैतिक आन्दोलन मे, पूंजीवाद की रक्षा करने वाली सत्य-अहिंसा की धारणा की अड़चनें डाल दी, वन भारत की जनता संघर्ष और अपनी शक्ति से स्वाभाविक मार्ग पर चल-

कर, विदेशी सरकार के शोषण से बहुत पहले ही मुक्ति पा चुकी होती और उस मुक्ति का रूप भी दूसरा ही होता। उस मुक्ति में देश के भाग्यविधान का अधिकार भारत की पूँजीपति श्रेणी के हाथ मे न सिमिट कर जनता के हाथ में होता।

"बताइये भारत स्वतन्त्र किस बात में हो गया है? आर्थिक और राजनैतिक रूप मे आज भी हमारा भाग्य अंग्रेज और अमेरिकन साम्राज्यवादियो के नियन्त्रण मे है। हमारा व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय संबंध उनकी ही इच्छा से, उनके लाभ के विचार से चलता है। यह बात गलत है कि कांग्रेस ने अंग्रेजों से राज छीन लिया है। वास्तविकता यह है कि अंग्रेज साम्राज्य दूसरे महायुद्ध के परिणाम मे निर्बल हो जाने के कारण, भारत पर सैनिक शक्ति से शासन करने योग्य नही रहा। अंग्रेजों ने भारतीय जनता के असंतोष को भी खूब समझ लिया था। अब भारत के शोषण का उपाय उनके हाथ मे यही है कि भारत की पूंजीपति शोषक श्रेणी की साझेदारी में काम चलाये। पहले अंग्रेजी शासन के शोषण मे भारतीय पूँजीपति श्रेणी भी पिसती थी, उनका भाग बहुत कम रहता था। अब देश की पूँजीपति श्रेणी का भाग बढ गया है। इनके स्वार्थ अमरीकन और अंग्रेज शोषको के साथ साझे हो गये है। यही है हमारा स्वराज्य जो इस देश की पूँजीपति श्रेणी ने, गाधी जी के नेतृत्व मे ब्रिटेन से समझौता करके पाया है। इसी के लिये हम देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन को पूँजीवादी वैधानिकता मे बाँधकर पंगु बना देने वाले गाधी जी और काग्रेस के प्रति कृतज्ञ हो सकते है।"

शुद्धसाहित्यिक भी आ गये थे। विचार की सूक्ष्मता के लिये माथे पर त्योरियां डाल कर उन्होंने प्रश्न किया, "अपने कहा कि बापू ने अपने पूँजीवादी सत्य-अहिंसा के लिये, देश के हित के प्रति विश्वासघात किया और देश की पूंजीपति श्रेणी और ब्रिटेन के स्वार्थ की रक्षा की। पूँजीवादी सत्य-अहिंसा से आपका क्या अभिप्राय है? क्या सत्य और अहिंसा भी पूँजीवादी और मार्क्सवादी अलग-अलग होगी?"

"निश्चय होंगी !" हथेली पर दूसरे हाथ का घूसा मारते हुये मार्क्सवादी ने उत्तर दिया, "सत्य-अहिंसा के सम्बन्ध में सभी लोगो की धारणा अपने हित, ज्ञान और विश्वास के आधार पर होती है। हमारे ज्ञान, विश्वास और आदर्श भी हमारी भौतिक परिस्थितियो के आधार पर होते है।"

"बस यही तो भौतिकवादी मार्क्सवादियो की सबसे बड़ी भूल है" सर्वोदयीजी ने सुझाया, "मेरे भाई" अपना हाथ फैलाकर वे बोले, "तुम लोग तो दाल-रोटी और चाय-सिगरेट मिल जाना ही स्वराज्य और देश की उन्नति समझते हो। बापू का उद्देश्य तो इतना संकीर्ण नही था। वह तो देश मे सत्य अहिसा की स्थापना से आत्मिक शान्ति चाहते थे।"

"आखिर उस सत्य-अहिंसा और आत्मिक शान्ति का कुछ परिचय हम लोगो को भी तो हो ?" वैज्ञानिक ने प्रश्न किया, "हमे भी मालूम हो कि अग्रेजो के चले जाने के बाद कैसी सत्य-अहिंसा और आत्मिक शान्ति हमे मिली है।"

मार्क्सवादी बात स्पष्ट करने के लिये पहले से ऊँचे स्वर मे बोले, "अंग्रेज इस देश से सत्य-अहिंसा और आत्मिक शान्ति की गठरी बाँध कर तो लिये नही जा रहे थे। वे तो हमे राजनैतिक पराधीनता में बाँधकर इस देश की आर्थिक लूट अर्थात भौतिक साधनो की ही लूट कर रहे थे। देश की जनता इस लूट को रोकना चाहती थी। जनता आत्मनिर्णय का अधिकार किस लिये माँगती थी ? अग्रेज आप को मन्दिर, मसजिद मे जाने से नहीं रोकता था, शीर्षासन करने मे भी अड़चन नही डालता था, उपवास करने और 'रघुपति राघव राजाराम' गाने से भी मना नही करता था। अग्रेजी राज में गाधी जी की सत्य-अहिंसा और आत्मिक शान्ति को चोट किस तरह पहुँच रही थी ?"

"क्यों, विदेशी दासता से देश का पतन नही हो रहा था !" काग्रेसी भी बीच में बोल उठे।

"देशी दासता से क्या उत्थान हो रहा है ?" कामरेड बोल उठे, "हम तो यह पूछते है कि देश यदि सशस्त्र क्रान्ति से कुछ जल्दी अंग्रेजो को भगा देता तो सत्य-अहिंसा और आत्मिक शान्ति को क्या हानि पहुँचती ? उससे गाधीजी की मुक्ति के मार्ग मे क्या अडचन आ जाती ?"

"आप सशस्त्र क्रान्ति की बात करते है ? एक निशस्त्र देश सशस्त्र क्रान्ति कर ही कैसे सकता था ।" सर्वोदयीजी बोले, "यह तो बापू का ही चमत्कार था कि इतने प्रबल साम्राज्य की शक्ति से एक निशस्त्र देश को स्वतन्त्र करा लिया । आपके पास शस्त्र थे ही कहाँ ?"

"शस्त्र नहीं थे इसलिये अहिंसा उचित थी या जनता की शक्ति का प्रयोग पाप है ?" वैज्ञानिक ने प्रश्न किया, "गांधी जी ने यह भी तो कहा था कि तलवार की राह से देश शायद कम कुर्बानियाँ करके ही स्वतन्त्र हो जाता । इसका स्पष्ट अर्थ है कि गाधी जी देश में सशस्त्र क्रान्ति को असम्भव नही समझते थे । यह कहना कि गाधी जी ने देश को निशस्त्र देख कर ही हमें अहिंसा का पाठ पढाया, उनके प्रति ही अन्याय है । वे अहिंसा को नीति नही, उद्देश्य मानने का ही उपदेश देते थे । प्रश्न तो यह है कि सशस्त्र क्रान्ति को टालने के लिये देश को अधिक देर तक गुलाम रखने में गाधी जी ने देश की क्या भलाई देखी ?"

"देश की आत्मा की रक्षा ।" सर्वोदयीजी ने गर्दन उठाकर उत्तर दिया ।

खिन्नता से सिर हिलाकर वैज्ञानिक बोले, "श्रीमान, आप तो पहेलियो में बात करते है ।"

"देश की आत्मा की रक्षा से आपका मतलब, पूजीपति श्रेणी की सम्पत्ति और मुनाफा कमाने के अधिकार की रक्षा है ।" मार्क्सवादी बोले, "गांधी जी सम्पत्ति पर स्वामी के अधिकार की रक्षा के न्याय मे विश्वास करते थे । मालिक से सम्पत्ति का अधिकार छीना जाना उनकी दृष्टि में सबसे बड़ा अन्याय और हिंसा थी ।"

सर्वोदयीजी टोक कर पूछ बैठे,"आप यह बताइये, बापू अमीरों के सहायक और मित्र थे या दरिद्रो और गरीबो के ?"

"गाधी जी निश्चय ही मालिक श्रेणी के सहायक और रक्षक थे ।" कामरेड ने ऊँचे स्वर मे उत्तर दिया ।

"इतने बड़े झूठ को भला कौन मान सकता है ।" सर्वोदयीजी और शुद्धसाहित्यिक प्राय. एक साथ ही बोले, "बापू ने अपना जीवन ही दरिद्र नारायण की सेवा मे अर्पण कर दिया । आप उन्हे मालिकों का समर्थक बता रहे है !"

"आपको याद नही," इतिहासज्ञ ने प्रश्न किया, "जब यू० पी० के जमीदारो का डेपूटेशन जमीन्दारी उन्मूलन के सम्बन्ध मे गांधी जी के पास गया था, गाधी जी ने उन्हे क्या उत्तर दिया था ? गाधी जी ने उन्हे विश्वास दिलाया था, सम्पत्ति छीनने का मैं कभी समर्थन नही कर सकता । आप लोग विश्वास रखिये, मै अपना सम्पूर्ण प्रभाव और शक्ति श्रेणी सघर्ष को रोकने मे लगा दूँगा और यदि कभी अन्यायपूर्ण तरीके से आपकी सम्पत्ति छीनी जायगी, तो मैं आपका साथ दूँगा ।"

कामरेड बोले, "परन्तु किसानो-मजदूरो को गांधी जी ने कभी आश्वासन नहीं दिया कि मालिक, सम्पत्ति पर अधिकार होने से ही तुम्हारा शोषण करते है । जनता और राष्ट्र के हित के लिये उस सम्पत्ति पर सम्पूर्ण समाज का अधिकार करने के लिये, यदि तुम सत्याग्रह करो तो मैं तुम्हारा साथ दूँगा । गाधी जी ने पूंजीवाद से, किसान-मजदूर श्रेणी के स्वतन्त्रता प्राप्त करने के सघर्ष मे, सदा सर्वहारा श्रेणी के विरुद्ध पूजीपति श्रेणी का ही साथ दिया । शासक और शोषक श्रेणी के अधिकार की रक्षा के लिये बल प्रयोग और खून बहाना गांधी जी को कभी हिंसा नही जान पड़ी । जब कानपुर और अहमदाबाद मे मजदूरो ने अपनी मांगों के लिये हड़ताल की और हड़ताल में साथ न देने वाले मजदूरों को साथ मिलाने के लिये, मिलो के समाने लेट कर सत्याग्रह किया तो गाधी जी ने इस काम को अनुचित बता दिया और मिल

मालिकों के पुलिस बुला कर, इन मजदूरों पर लाठी चार्ज कराने का भी समर्थन किया। गांधी जी की अहिंसा का वास्तविक उद्देश्य तो सदा सम्पत्ति कमाने और उस पर स्वामित्व के अधिकार की रक्षा ही रहा है।"

"आप तो कह रहे थे" जिज्ञासु ने याद दिलाया, "कि गाधी जी ने ब्रिटिश शासन से मुक्ति प्राप्त करने के भारतीय स्वतंत्रता-आन्दोलन में अडचने डाली और ब्रिटिश शासन को देश मे देर तक कायम रहने मे सहायता दी!"

"बेशक, गाधी जी ने दो तरह से भारतीय स्वतत्रता को स्थगित किया।" कामरेड बोले, "पहली बात, आप याद कीजिये १९२२ में बम्बई और चौरी-चौरा मे जन-क्रान्ति जैसा रूप ले रही थी, यदि उसे बढ़ने का अवसर दिया जाता तो क्या ब्रिटिश सरकार इसी प्रकार सिंहासन आरूढ़ बनी रहती?"

"यह आप स्वप्न की बातें कर रहे है।" सर्वोदयी ने धमकाया, "देश तैयार कहाँ था? यदि हिंसा की वह लहर चल जाती तो जनता बरबाद हो जाती।"

"स्वप्न की बातें आप कर रहे है।" कामरेड ने प्रत्युत्तर दिया, "गाधी जी ने वह आन्दोलन १२ फरवरी १९२२ को रोका था। जानते हैं आप, फरवरी को वायसराय ने लन्दन तार भेजा था कि स्थिति बहुत ही गम्भीर और नाजुक है, हमे धोखे मे नही रहना चाहिए![1] ऐसी स्थिति में आन्दोलन रोकना अंग्रेजों को पाँव जमाने का अवसर देना था या नही? और स्पष्ट उदाहरण लीजिये, १९३० में क्या हुआ? १९३० के आन्दोलन में जब पेशावर को जनता ने अंग्रेजी शासन से विरुद्ध विद्रोह किया, अंग्रेजों ने मुस्लिम जनता पर गोली चलाने के लिये हिन्दू

---

1. Telegraphic Correspondence regarding the situation in India between Viceroy and Secy, of state Cmd, 1566.1622.

गढ़वाली पल्टन को भेजा। इस गढ़वाली पल्टन ने अपने हिन्दुस्तानी मुसलमान भाइयो पर गोली चलाने से इनकार कर दिया। कई सिपाहियो ने अपनी बन्दूकें जनता को सौप दी। पेशावर दस दिन के लिये अग्रेजी शासन से स्वतंत्र हो गया।"

"यदि गांधी जी और काग्रेस ने गढ़वाली सिपाहियो का समर्थन करके, देश में अंग्रेजी राज कायम रखने वाली हिन्दुस्तानी फौज को देश की आजादी के लिये जनता का साथ देने और विदेशी राज से लड़ने के लिये पुकारा होता तो क्या परिणाम होता ? पेशावर में आरंभ किया गया आजादी का जंग देश भर मे फैल जाता और हम तीसरे महायुद्ध में अंग्रेजी दमन का शिकार न बने होते परन्तु गाधी जी ने देश की जनता का साथ देने के कारण इन सिपाहियों की निन्दा की और अंगरेज सरकार के हुक्म से अपने भाइयो पर गोली चलाना उन सिपाहियो का धर्म बताया। उस समय गाधी जी को अहिंसा का सबसे बडा धर्म और हिन्दू-मुस्लिम एकता भी भूल गयी। अहिंसा से बड़ा धर्म उन्हें जान पड़ा, सिपाही का मालिक की आज्ञा मानना। यह शोषण की नैतिकता की रक्षा के लिये सब कुछ कुर्बान कर देना नही तो क्या था ? अपनी स्वतन्त्रता के लिये विद्रोह करने वाले अपने भाइयो से सिपाहियो की सहानुभूति, गाधी जी को हिंसा जान पड़ी और स्वतन्त्रता चाहने वाली प्रजा पर गोली चलवाना, धर्म और नैतिक जान पड़ा। खैर, हम पूछते है कि इसे आप अंग्रेजी शासन कायम रखने में सहायता देना नही कहियेगा ?"

इतिहासज्ञ कुछ कहने के लिये करवट ले रहे थे। कामरेड उन्हे सुन लेने का अनुरोध कर कहते गये, "सुनिये, उस समय देश में जो क्रान्तिकारी अंग्रेजी सरकार की व्यवस्था और प्रतिष्ठा की जड़ों मे बम विस्फोट कर रहे थे, गांधी जी ने कांग्रेस के मंच से उनकी भी सदा निन्दा ही की और देश की जनता को ब्रिटिश शासन-व्यवस्था और विधान के आगे सिर झुकाये रहकर, अधिकारों की मांग करते

रहने का उपदेश दिया। सन् १९४६ में जब बम्बई में समुद्री सिपाहियो ने ब्रिटिश सम्राज्यवादी शक्ति के विरुद्ध सशस्त्र बगावत की, तब भी गाधी जी ने इसका विरोध किया और उनकी ओर से पटेल साहब अंग्रेजी साम्राज्यशाही की सहायता के लिये बगावत शात कराने पहुँचे। गांधी जो और काग्रेस नेताशाही यह कभी नही चाहते थे कि सर्व-साधारण जनता देश के शासन का अधिकार अंग्रेजो से छीन ले। ऐसा होने से देश के शासन का अधिकार जनता के हाथ मे चला जाता। गाधी जी और काग्रेस की नीति यह थी कि देश की जनता के असंतोष का दबाव अंग्रेजों पर डाला जाय और अग्रेज अपनी पूँजीवादी व्यवस्था का बना-बनाया शासन इस देश की पूंजीपति श्रेणी को सौंप दे; यही हुआ भी। यहाँ तक की १९४२ मे भी जो कुछ विद्रोह अग्रेजी साम्राज्य-शाही के विरुद्ध हुआ, गांधी जी ने उसका भी विरोध ही किया। गांधी जी और काग्रेस-हाईकमाण्ड ने १९४२ के विद्रोह की जिम्मेवारी अग्रेजो पर डाली और कहा कि तुमने कांग्रेस के नेताओं को जेल में डालकर जनता को बेलगाम कर दिया, तभी यह सब कुछ हुआ वर्ना हम विद्रोह न होने देते लेकिन आज भारत को आजादी दिलाने का सेहरा गांधी जी और कांग्रेस के सिर पर है।"

"आपने तो पूरी बात पर ही पानी फेर दिया।" खिन्न होकर भद्रपुरुष बोले; "आपका मतलब है, काग्रेस और गांधी जी ने ब्रिटिश शासन को देश से हटाने के लिये कुछ नही किया?"

"यह हम नही कहते," मार्क्सवादी बोलने के लिये आतुर इतिहासज्ञ को अवसर न देकर बोले, "हम कहते है....."

काग्रेसी ने उन्हें क्रुद्ध स्वर में टोक दिया, "आप अब तक तो प्रमाण देते आये कि गाधी जी और काग्रेस अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध विद्रोह को दबाते रहे है और आप यह भी नहीं कहते कि गांधी जी और कांग्रेस ने भारत से ब्रिटिश शासन हटाने का काम नही किया, तो आप

कुछ भी नही कहते ।" अपने तर्क की प्रबलता प्रकट करने के लिए वे हो-हो कर अट्टहास कर उठे ।

"हम जो कहना चाहते है, यह हमे ही कह लेने दीजिये ।" मार्क्स-वादो ने विनय से प्रार्थना की, "हम यह कहना चाहते है कि गाधी जी और काग्रेस के नेताओ ने, जो दोनो ही पूँजीपति श्रेणी के प्रतिनिधि थे और पूँजीवादी न्याय और नैतिकता की धारणा मे विश्वास रखते थे, ब्रिटिश पूंजीवादी, साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध भारतीय क्राति का वरोध किया क्योकि उन्हें आशंका थी कि ब्रिटिश शासन की पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध भारतीय क्राति इस देश मे पूजीवादी व्यवस्था का भी समाप्त कर दे सकती थी । गाधी जी और काग्रेस के पूँजीवादी नेतृत्व के सामने १९१७ की समाजवादी रूसी क्रान्ति का उदाहरण था । रूस में क्रान्ति जार के शोषक शासन के विरुद्ध हुई थी । कम्युनिस्टो ने क्रान्ति का नेतृत्व मजदूरों, किसानो और सिपाहियो के सहयोग से किया । परिणाम में शक्ति उनके हाथ में गयी और वहाँ जारशाही के साथ पूंजीवादी और सामन्तशाही व्यवस्था का भी अन्त होकर जनता का राज हो गया । गांधी जी ने अप्रैल १९४० के 'हरिजन' मे अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया था कि 'मुझसे ऐसे संघर्ष मे भाग लेने की आशा नही की जा सकती जिससे देश मे अराजकता और लाल-विध्वंस फैल जाये, अर्थात् अग्रेजी शासन टूटकर अराजकता फैल जाने की अपेक्षा वे अंग्रेजी शासन को ही बेहतर समझते थे । उसकी दृष्टि मे अराजकता का अर्थ मालिक और पूँजीपति श्रेणी की मिल्कियत के अधिकार पर चोट थी ।

"सुनिये !" इतिहासज्ञ ने टोका ।

इतिहासज्ञ बहुत देर तक बोलने के लिए आतुर थे परन्तु ऊँचा बोल सकने वालों की आवाज की बराबरी नही कर पा रहे थे । दोनों हाथ उठाकर बोले, "कामरेड ज़रा हमारी भी सुन लीजिए। आप तो बिलकुल तोप दागते चले जा रहे हैं...."

सर्वोदयीजी खुश हुए। उन्होने भी इतिहासज्ञ की बात सुन लेने की सिफारिश की।

इतिहासज्ञ ने कहा, "गाँधी जी सम्पत्ति के निजी स्वामित्व को और स्वामी-सेवक के सम्बन्ध को नैतिक मानते थे, यह तो वे स्वयं स्वीकार करते थे परन्तु यह कह देना ज्यादती है कि गाँधी जी स्वराज्य की सम्भावना देखकर भी अंग्रेजी राज को कायम करने के पक्ष में थे। आप उनके शब्दो पर ध्यान दीजिये। उन्हे अराजकता और विध्वस स्वीकार नही था। यह केवल आध्यात्मिकता ही नही, व्यवहारिक दूरदर्शिता भी थी। आपने १९३० मे गढवाली पल्टन के विद्रोह की चर्चा की है। आप बताइये; यदि उस समय कुछ पल्टने सचमुच विद्रोह कर बैठती तो उनका राजनैतिक नेतृत्व कौन करता? कॉंग्रेस में न तो ऐसी हिम्मत थी न यह उनके 'सिद्धान्त' के अनुकूल था। आपकी कम्युनिस्ट पार्टी तो उस समय अभी पैदा हो रही थी। उस समय के शसस्त्र क्रान्ति मे विश्वास रखने वाले लोगो—उदाहरणतः भगतसिंह और आज़ाद को क्या भारतीय सेनाये अपना नेता स्वीकार कर लेती? उस समय तो राजा-महाराजाओं के ही पास संगठित शस्त्र-शक्तियाँ थी। वे लोग तो किसान-मजदूर के राज मे विश्वास रखते थे। प्रजातन्त्र प्रणाली में भी विश्वास नही रखते थे। वे प्रथम तो अंग्रेजो का साथ देते या अपने राज फैलाने का यत्न करते। उनकी सफलता का अर्थ होता, पूँजीवाद पर प्रतिक्रियाशील, सामन्तवाद का शिकंजा लग जाना। गाधी जी उस तरह की विभीषिका नही चाहते थे तो क्या बुरा करते थे।

"बिलकुल ठीक कहा आपने। यह कामरेड असली राजनीति क्या जानें!" कांग्रेसी ने इतिहासज्ञ का बहुत जोर से समर्थन किया।

सर्वोदयीजी ने भी उनका साथ दिया, "बहुत ठीक, गांधी जी की दूरदर्शिता का क्या कहना।"

इतिहासज्ञ ने उन्हें भी सुनने का सकेत करके कहा, "यही बात सन् ४६ के सैनिक विद्रोह हो जाने पर होती। उस समय मान लिया कि

आपकी कम्युनिष्ट पार्टी की कुछ शक्ति थी, परन्तु इतनी शक्ति तो नहीं थी कि अंग्रेजो की और इस देश के प्रतिक्रियावादी लोगो की शक्ति को सुविधा से पछाड़ लेते। सशस्त्र संघर्ष होने पर राजा-महाराजा और अधिकाश सेनायें आपका साथ देती ! जनता पर आपका उस समय कितना प्रभाव था ! आज भी चुनाव हो तो आप क्या आशा रख सकते है ? आपके सामने गृहयुद्ध (सिविलवार) के सिवाय कोई चारा नहीं था, आपके विरोध में संसार भर की साम्राज्य-शक्तियाँ यहाँ टूट पडतीं। गृहयुद्ध के चित्र की कल्पना तो कीजिए। देश के बटवारे के समय जो कुछ पंजाब में हुआ, उसका दस-बीस गुना देश भर में होता। समझ लीजिए जो हुआ अच्छा ही हुआ। विदेशी शासन से मुक्ति मिल गयी। आप आज की चिन्ता कीजिये।"

"इन्हे असंतोष इस बात का है" सर्वोदयीजी ने कामरेड और मार्क्सवादी को उलाहना दिया, "कि भारत से अंग्रेजो शासन हटाने के समय रक्तपात नही हुआ, गृह-युद्ध नही हुआ। हिंसा और लूट-पाट करने का अवसर नही मिला !"

"नही, हमें असन्तोष रक्तपात न होने का नही है।" कामरेड ने उत्तेजित न होकर उत्तर दिया, "लूटपाट का भी अरमान नही था। हमे असंतोष इस बात का है कि स्वराज्य हो जाने पर भी सर्व-साधारण को कोई अधिकार नही मिला, अवसर नही मिला, उनकी अवस्था नहीं सुधरी। उनके श्रम के फल की लूट अब भी जारी है। खाने-पहरने को पहले से कम मिलता है और राजनैतिक-आर्थिक माँगों के लिये आन्दोलन की आज़ादी पहले से बहुत कम है।"

"तो आप चाहते हैं कि एक ही दिन में सब कुछ हो जाय।" कांग्रेसी बोले, "आप सरकार को कुछ करने का अवसर तो दीजिये, सरकार को सहयोग दीजिये !"

"एक दिन में सब नहीं हो सकता, यह सभी जानते हैं परन्तु लोटे से गिरे पानी का बहाव तो देखा जा सकता है !" वैज्ञानिक ने

उत्तर दिया, "अब एक दिन नहीं, तीस बरस का अनुभव हमारे सामने है। सफलता-असफलता एक बात है परन्तु नीयत तो दिखाई दे गयी है। कांग्रेस सरकार शिकायत करती है कि जनता सहयोग नही देती। जनता अपने कल्याण के काम में सहयोग न दे, यह कैसे हो सकता है परन्तु सरकार जनता का सहयोग उन्हे शोषण का शिकार बनाने के लिये चाहती है। इस काम में जनता को भला क्या उत्साह हो! राष्ट्रीय सरकार ने जनता का दामन नही जनता की शोषक श्रेणी का दामन पकडा है। शासन का अवसर हाथ मे आने से पहले काग्रेस एलान करती थी कि पैदावार के साधनो का राष्ट्रीयकरण किया जायगा। शासन हाथ में आने पर राष्ट्रीयकरण पहले पाँच वर्ष के लिये टला, फिर दस बरस पर बात गयी; अब अनिश्चित काल के लिये। सरकार को सहयोग वही देगा जिसका हित सरकार पूरा करेगी। सरकार पैदावार बढ़ाना चाहती है तो उसका तरीका यह नहीं हो सकता कि पैदावार के साधनो को मुनाफाखोर मालिको के हाथ मे रहने दे या जमीदारो से कहे कि अपनी बेकार जमीन भूदान में देकर पुण्य कमा लो। उसका उपाय तो यही हो सकता है कि इन साधनो का उपयोग राष्ट्र की जनता के हित के दृष्टिकोण से किया जाय। राष्ट्र और जनता के हित का उपाय मुनाफाखोर अधिक अच्छी तरह कर सकता है या स्वयं राष्ट्र और जनता?"

कामरेड झुंझलाकर बोले, "पैदावार बढ़ाने से फायदा क्या अगर जनता उसे खरीद न सके। पैदावार बढ़ाने का तो नाम सिर्फ मजदूर-विरोधी नीति के बहाने के लिये है। जब दाम बढ़ते जायं और मजदूरी न बढ़े तो जनता पैदावार को खरीदेगी कैसे! सरकार तीन बरस से पैदावार बढ़ा रही है, साथ ही महँगाई बढ़ रही है और टैक्स बढ़ रहा है!"

"टैक्सो के बारे मे एक बात आप देखिये," वैज्ञानिक बोले, "युद्ध के ज़माने में अंग्रेजों को रुपया इकट्ठा करना था तो उन्होंने मुनाफे पर टैक्स लगाया था, यानि जो रुपया पूँजीपति की जेब मे चला जाय

उस पर टैक्स था। पूँजीपति यह टैक्स खरीददार जनता पर नही डाल सकता था; मजबूर था। राष्ट्र का भला चाहने वाली सरकार आयी है तो मुनाफो पर से, पूँजीपति की जेब पर से बड़े-बड़े टैक्स हट गये और खरीददार जनता पर लग गये। यह जनता का जीवन-स्तर ऊँचा करने का उपाय हो रहा है ?''

''यदि आप कुछ देर के लिये मन से उद्योग-धन्धे चलाने वालों के प्रति द्वेष और हिंसा दूर कर दे तो बात आपकी समझ में आ सकती है।'' गम्भीर बात कहने की भूमिका के रूप मे कांग्रेसी जी बोले, ''और यदि सरकार और पूँजीपतियों के विरुद्ध द्रोह फैलाना ही आपका उद्देश्य है तो बात दूसरी है।''

जिज्ञासु ने उत्सुकता से आगे बढ़कर अनुरोध किया, ''जरूर समझाइये साहब, हम जरूर समझना चाहते है।''

सब लोगों को समझने के लिये इच्छुक देखकर कांग्रेसी गम्भीरता से बोले, ''आप देश का औद्योगीकरण चाहते है ? औद्योगीकरण बिना पूँजी के नही हो सकता इसलिये राष्ट्र निर्माण के लिये पहला कदम देश में पूँजी इकट्ठा करना होना चाहिये। इसीलिये सरकार पहिले पूँजीपतियो को पूँजी इकट्ठी करके देश में उद्योग-व्यवसाय बढ़ाने का अवसर दे रही है। देश मे उद्योग-व्यवसाय बढ़ने पर ही जनता के जीवन का स्तर ऊँचा हो सकता है। समझे आप ?''

मार्क्सवादी उत्तेजित हो गये, ''आप हमें समझाना चाहते हैं कि कांग्रेसी सरकार राष्ट्र के औद्योगीकरण के लिए देश के पूँजीपतियों को झासा दे रही है। वास्तव में झांसा दिया जा रहा है जनता को। आप कहते है, राष्ट्र में उद्योग-धन्धे चलने के लिये पूँजी चाहिये। पूँजी होती क्या है ? एक गाँव में आप सड़क बनाना चाहते हैं पर पूँजी नहीं है। फर्ज कीजिये, गाँव वाले अपने साझे हित का खयाल कर, सब लोग रोज दो घटे मुफ्त काम कर देते है, सड़क बन जायगी। पूँजी हो गई न। पूँजी तो परिश्रम की शक्ति ही है। पूँजीपति के पास पूँजी कहाँ से

आती है ? मुनाफे के रूप में मजदूर के श्रम का हथियाया हुआ भाग ही तो उसकी पूँजी है । वास्तव मे तो पूँजीपति की पूँजी भी राप्ट्र या जनता की ही सम्पत्ति है । आप राष्ट्र और जनता की भलाई के लिये राप्ट्र की पूँजी, पूँजीपति से लौटाने के बजाय और पूँजी यानि मुनाफे के रूप मे जनता के श्रम का भाग उसके हाथ मे दे देना चाहते है । राप्ट्र पर पूँजीपति के कब्जे को और बढा देना चाहते है । इस देश के पूँजीपति का अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवाद से गहरा नाता जोड़कर, इस देश को अमेरिका और इंगलैण्ड की पूँजीवादी व्यवस्था के साथ जकड़ देना चाहते है । जब मजदूर कहता है—'ससार के मजदूरो एक हो' तो आप कहते है यह लोग अपने देश को विदेश का दास बना रहे है । जब नेहरू साहब देश को अंग्रेजों के कामनवेल्थ मे फँसा देते है, आप समझते है, राष्ट्र की विजय हो गयी । जब पूँजीपति देश को अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवादी व्यवस्था मे फँसाता है तो आपको देश का कल्याण जान पड़ता है ।"

"हम यह जानना चाहते है" वैज्ञानिक बोल उठे, "कि देश मे उद्योग-धन्धो का विस्तार कुछेक पूँजीपतियो के यत्न से, उनके मुनाफे के दृष्टिकोण से जल्दी हो सकता है या सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रयत्न से और की आवश्यकता और हित का खयाल करने से ! पूँजीपति तो वही धन्धा करेगा जिसमे उसे तुरन्त मुनाफे की आशा होगी । पूँजीपति अमेरिका से कपडा बनाने की मशीन खरीदेगा । ऐसी मशीन को बनाने वाली मशीन नही खरीदेगा ।"

"नहीं नही", कामरेड बोले, "आप यह क्यों नही सोचते कि अमेरिका और इंगलैण्ड, जो स्वयं मुनाफे की खोज में है, आपको औद्योगीकरण मे सहायता क्यों देने लगे ! वे तो जितनी देर तक हो सकेगा, आपको पिछड़ा हुआ ही रखना चाहेगे । शोषकों से आशा करना कि वे आपको अपने बन्धन से छूटने योग्य बनायेंगे, अपने आपको धोखा देना है । क्या आप समझते हैं कि उनका हृदय परिवर्तन हो जायगा ?

अलबत्ता अमेरिका के सहयोग से इस देश का पूँजोपति अपनी पूँजी और देश की व्यवस्था पर अपना कब्जा बढा लेगा, सर्व-साधारण जनता का भला न हो सकेगा। पूंजीपति के फायदे को ही राष्ट्र का फायदा बताना हो तो बात दूसरी है।"

"भाई साहब, हम दूसरो के उदाहरण से क्यो न अपनी समस्या सुलझाये ?" इतिहासज्ञ ने प्रश्न किया, "यह तो संसार का अनुभव है कि व्यक्तिगत स्वामित्व में चलने वाले धन्धों से पैदावार कभी उतनी अधिक नही हो सकती जितनी कि राष्ट्रीय स्वामित्व और प्रबन्ध में चलने वाले धन्धों से हो सकती है। इंगलैण्ड तो पूंजीवादी देश है। वहाँ के पूँजीपति अपना बस चलते कभी अपना अधिकार छोड कर, अपने धन्धो को राष्ट्र के हाथ मे देने के लिये तैयार नही होंगे परन्तु पिछले महायुद्ध के समय जब अपनी जान बचाने के लिये पैदावार को बढाना जरूरी था, उन्होने युद्ध का सामान तैयार करने के सब कारखाने और दूसरे भी कई धन्धे जिनका सम्बन्ध युद्ध से था, राष्ट्रीय अधिकार मे कर लिये थे। क्या हमारे लिए जरूरी है कि जिस तरीके को दूसरे लोग गलत समझ चुके है, उसे जरूर दोहराये और सीधा तरीका सामने होने पर भी उसे न अपनाये ? हमारा देश अन्न की कमी से मर रहा है। आपके सामने अमेरिका का ही उदाहरण है कि बडे परिमाण में खेती करने से खर्च कम और पैदावार अधिक होती है परन्तु आप भूमि पर छोटे-छोटे किसानो के स्वामित्व का महत्व अधिक समझते है इसलिये भूमि का राष्ट्रीयकरण करके उस पर बड़े परिमाण मे साझी खेती नही कराना चाहते। आप रूस का ही उदाहरण देखिये। क्रान्ति से पहले जब रूस पूंजीवादी व्यवस्था के ढंग पर चल रहा था। वहाँ जनता का ८० प्रतिशत भाग हमारे देश की तरह खेती ही किया करता था और अन्न कष्ट भी वहाँ सदा ही बना रहता था। समाजवादी ढंग पर पैदावार के राष्ट्रीयकरण के बाद से आप ही जानते हैं कि वहाँ अन्न की पैदावार कितनी बढ़ गई है कि वह दूसरे देशो को अन्न दे रहा है।

अन्न के अतिरिक्त दूसरी चीजों की भी हालत देख लीजिये। कहाँ तो रूस योरूप मे सब से पिछडा हुआ गिना जाता था और आज अमेरिका और ब्रिटेन की मिली हुई शक्ति भी उसके भय से काँप रही है। रूस मे पैदावार की शक्ति कहाँ से आ गयी ? यह रूस की भूमि और आकाश का जादू नही, समाजवादी व्यवस्था और मेहनत करने वालो के संगठन की शक्ति है। युद्ध के बाद से अमेरिका-इंगलैण्ड एक ओर बेकारी से परेशान है दूसरी ओर महंगाई से। रूस मे बेकारी बिलकुल नही, बेकारी की सम्भावना ही नही। कीमते वहाँ लगातार घट रही है। कारण स्पष्ट है कि वहाँ पैदावार मुनाफे के लिये नही, जनता के उपयोग के लिये होती है।''

इतिहासज्ञ के लम्बे व्याख्यान के उत्तर मे काग्रेसी जी फिर बोले, ''परन्तु देश के औद्योगीकरण के लिये पूँजी और उद्योग धन्धो के साधन तो चाहिये। हमारे सामने अमेरिका, इंगलैण्ड और जापान के औद्योगिक विकास के भी तो उदाहरण है। हम समाजवाद को कब बुरा कहते है। पहले देश का औद्योगीकरण तो हो जाय उसके बाद राष्ट्रीयकरण भी हो जायगा। क्यों साहब !'' उन्होने शुद्धसाहित्यिक, सर्वोदयीजी तथा दूसरे लोगो के समर्थन की आशा मे पूछा और उन लोगों ने, 'बिलकुल ठीक है' कह कर उनका समर्थन कर भी दिया।

इतिहासज्ञ तिलमिला उठे, ''यह इतिहास को उलटने की चेष्टा है महाराज ! आप इगलैण्ड, अमेरिका और जापान के ढंग पर अपना औद्योगिक विकास करना चाहते है !'' काग्रेसी जी को हामी भरते देख वे बोले, ''ठीक है, उन लोगों ने पहले भाप का इंजन का अविष्कार किया, पहले वे अपनी बुनाई की मशीनें खच्चरों से चलवाया करते थे और लकड़ी के जहाज बनाते थे। पहले उनकी डाक देश भर मे घोड़ों पर चला करती थी। आप भी वही सब कीजियेगा ? आपको उनकी नकल नही करना, उनके उदाहरण से सीखना है। आप उनसे पूर्ण विकसित यंत्र बनाना सीखेगे और आविष्कार करेंगे तो उस से अच्छे यंत्रों का। ऐसे ही आर्थिक

व्यवस्था मे भी जो ठोकरे वे खा चुके है, उनकी नकल हम नहीं करेगे। आपके देश मे जिस समय औद्योगीकरण हो रहा है, उस समय यंत्रो अर्थात पैदावार के साधनों का उपयोग अनेक देशों मे सामाजिक और सामूहिक ढंग से होना आरम्भ हो चुका है इसलिये यह आवश्यक नही कि आप ब्रिटेन और अमेरिका की नकल इन साधनों को पहले पूंजीपति की व्यक्तिगत सम्पत्ति बनायें और बाद मे उनका राष्ट्रीयकरण करे। क्या जरूरत है कि हम देश को भयंकर आर्थिक संकटों मे से, लाखो की बेकारी की हालत से, जनता के भूख रहने और पैदावार को जलाने की हालत से गुजारें।"

"आप चाहते है सरकार सब मिलें और पैदावार के साधन उठा कर मजदूरो को सौंप दे ?" कांग्रेसी जी ने प्रश्न किया।

"यह तो चाहते है श्रेणी संघर्ष हो, हिंसा हो, और रक्तपात हो।" सर्वोदयीजी क्षुब्ध स्वर में बोले, "और फिर मजदूरो की तानाशाही हो। क्या यह दमन नही होगा ? मजदूरो का दमन और शोषण अन्याय है तो मजदूरो की तानाशाही, पूंजीपतियो का शोषण और दमन भी अन्याय है।"

वैज्ञानिक जोर से हँस दिये और बोले, "सर्वोदयीजी इस समय अनुभव के जगत की बात नही, आध्यात्मिक कल्पना की बात कर रहे हैं। आपको पूंजीपति का शोषण होने का भय है। मजदूरो का शोषण तो इसलिये होता है या हो सकता है कि वे अपने श्रम से पैदावार करते है। उनके श्रम का पूरा फल उन्हे न मिलना उनका शोषण है। मजदूर पूंजीपति के बंधन से छूट न जाये, या अपने श्रम का अधिक भाग देने के लिये मजबूर रहे इसीलिये उनका दमन किया जाता है। सर्वोदयीजी, आप बताइये कि पूंजीपति का शोषण और दमन मजदूर तानाशाही मे क्यों कर हो सकेगा जरा समझाइये तो ?"

"वाह क्यों" शुद्धसाहित्यिक ने उत्तर दिया, "जब आप पूंजीपति

की सम्पत्ति, उसकी मिल, कारखाना छीन लेगे तो यह उसका शोषण नहीं है ?''

'पूँजीपति की मिल राष्ट्र के अधिकार मे ले लेने का यह मतलब नही है श्रीमान कि वह मिल मजदूरो की ही मिल्कियत हो जायगी और पूँजीपति की मिल्कियत नही रहेगी।'' वैज्ञानिक ने अपनी बात समझाई, ''क्या मिल मालिक राष्ट्र का अंग नही है ? वह अकेला ही मालिक न रहेगा, उसे सहयोग देने वाले सब लोग मालिक हो जायंगे। यदि मालिक भी उस मिल मे काम करेगा तो वह भी साझीदार होगा। यदि पूंजीपति दूसरो पर अपना दमन चाहता है तो आप ही बताइये, आपकी अहिंसा मे उसके लिये कौन नाम और स्थान है ? मार्क्सवाद या कम्युनिज्म पूजीपति श्रेणी का शोषण नही करना चाहता। वह शोषण के अवसर और कारणो (श्रेणी विभाजन) को मिटा देना चाहता है। शोषक श्रेणी को समाप्त कर देने का मतलब पूंजीपतियो के गले काट देना नही, उनके हाथ से शोषण का अवसर ले लेना है। केवल उनका हृदय-परिवर्तन ही नही, कर्म भी परिवर्तन कर देना है। कम्युनिज्म तो मेहनत करने वालो का शोषण समाप्त करना चाहता है। मनुष्य-मात्र को जीविका के लिये श्रम करने का और अपने श्रम का पूरा फल पाने का समान अवसर देना चाहता है।''

''तो फिर आप मजदूरों के निरकुश-राज या मजदूरो की डिक्टेटरशिप की मॉग क्यो करते है !'' जिज्ञासु ने प्रश्न किया, ''आखिर समाज मजदूरो की तानाशाही क्यो सहे ? किसी भी श्रेणी की तानाशाही अन्याय है।''

''भाई यही तो हम भी कह रहे है,'' सर्वोदयीजी ने समर्थन किया, श्रेणी संघर्ष तो हिंसा की वृत्ति का परिणाम है। उससे समाज में हिसा ही फैलेगी। हमारा आदर्श तो रामराज्य की सत्य-अहिसा है जिसमें सब को समान अधिकार हो।''

''हमारा आदर्श रामराज की नहीं मेहनत करने वालो की सत्य-

अहिंसा है," कामरेड ने मुक्का उठाकर एलान किया, "जिसमे सबको समाज अवसर हो। जिसमें श्रम का आदर हो, शासन और शोषण का नही !"

इतिहासज्ञ के माथे पर प्रश्न चिन्ह बन गया, "रामराज्य की सत्य-अहिसा ? आप राजसत्ता के युग की व्यवस्था का रामराज्य चाहते है।.... जिसका वर्णन बाल्मीकि ने रामायण में और महाभारत में व्य'स ने किया है ? जिसमे राजा या भूमिपति ही सब कुछ था। प्रजा को, चाहे वह जिस स्थिति की हो, शासन के सम्बन्ध मे बोलने का अधिकार न था। राजा का पुत्र ही राजा होता था। भूमिपति श्रेणी ही समाज की स्वामी थी। श्रम करने वाले और कारोवार करने वाले सब अनादर की दृष्टि से देखे जाते थे ?"

"क्या कह रहे है आप !" सर्वोदयीजी ने ललकारा।

"ठीक ही कह रहा हूँ" इतिहासज्ञ कहते गये, "उस समय कोई राज-सभा होती थी तो राज सम्बन्धियो, उसके वंश के लोगो और मुँह लगो की मण्डली ही होती थी। भूमिपतियों की श्रेणी के उस शासन-काल में वैश्य को भी शासन व्यवस्था में कोई अधिकार नही था। कपड़ा बुनाने वाला, लोहे, लकड़ी, चमड़े का काम करने वाले, किसी भी प्रकार की मेहनत करने वाले, कर्मकार, मजूरे सब अनादर की दृष्टि से देखे जाते थे। समाज में उनका स्थान नीचा था। परिश्रम के सब काम जन्मगत और वंशगत होने से मेहनत करने वालो के लिये अनादर की वही परम्परा आज भी चली आ रही है। रामराज की सत्य-अहिंसा में श्रम का आदर नही था, स्वामित्व के अधिकार से श्रम का फल छीन लेने के अधिकार का ही आदर था। ब्राह्मण और क्षत्रिय का आदर इसलिये था कि ब्राह्मण व्यवस्था के बनाने के अधिकार से और क्षत्रिय शस्त्र के बल से, भूमि के मालिक बनकर श्रम किये बिना भोग करते थे। भूमिपति श्रेणी के एक-छत्र राज मे व्यापार का भी आदर न था। 'बनिये-बक्काल' का नाम तिरस्कार से ही याद किया जाता था। सौदा

बेचकर पेट पालने वाले का और धन पर सूद लेने वाले का भी निरादर ही था। किसी को घी बेचने वाला और किसी को अन्न बेचने वाला कह कर गाली दी जाती थी....''

राष्ट्रीयजी ने टोक दिया, ''यह तो भाई साहब इसलिये था कि देश सम्पन्न था, घर-घर मे सब कुछ था। बेचने खरीदने की जरूरत ही नही थी।''

इतिहासज्ञ कुछ झुझला उठे, ''आप बार-बार बेतुकी बात कह देते हैं। देश सम्पन्न था तो क्या श्रम के बिना पैदावार हो जाती थी? समृद्धि में क्या श्रम का निरादर होना चाहिये? कभी कोई समाज पदार्थों के विनिमय के बिना चल सकता है? यदि घर-घर मे जूता बनता और लोहा पीटा जाता था तो इन कामो को करने वाली जाति का निरादर क्यो था? क्या आप कल्पना कर सकते है कि प्रत्येक घर मे सभी काम हो जाते होगे? आप यही कल्पना कर सकते है कि जिस घराने में तीन-चार सौ गुलाम रहते होगे, वही परिवार अपनी जरूरत की सब चीजे स्वयं बनवा लेता होगा। या कल्पना कर सकते हैं कि एक गाँव के ठाकुर या राजवंश या गुरूवश के लिये सब काम प्रजा से जबरदस्ती, बेगार मे करा लिये जाते होगे। ऐसे युग और व्यवस्था में व्यापार का भी आदर नही हो सकता था क्योकि व्यापार की न तो अधिक आवश्यकता थी और न व्यापार के लिये पदार्थो की पर्याप्त पैदावार। केवल स्थानीय तौर पर पदार्थो का विनिमय हो जाता होगा। ऐसी व्यवस्था को केवल भूमिपति श्रेणी का निरकुश शासन कहा जा सकता था। समाज में आदर शासक श्रेणी का ही होता है और उसी की नैतिकता और व्यवस्था की मानता होती है। रामराज ऐसी ही व्यवस्था थी।

''अब पैदावार का साधन मुख्यतः भूमि नही उद्योग-धन्धे हो गये है तो उद्योगपतियों का आदर है। आज आप चाहे जितने बड़े ब्राह्मण या ठाकुर हों, चाहे राजा या गवर्नर हों, आप कपड़े बुनने की मिल के

मालिक को, चमडे का काम करने वाली मिल के मालिक को या लोहे का सामान बनाने वाली मिल के मालिक को, जुलाहा, चमार और लोहार कह कर अपने सामने जमीन पर बैठाने का साहस नहीं कर सकते। सूद खाने वाले बैंक के मालिक को सूदखोर कह कर दुत्कार नही सकते क्योकि यह पूंजीपति व्यवसायी श्रेणी का राज है। आज के व्यवसायी का यह सामर्थ्य है कि वह बडे से बडे राजा को खरीद सकता है। आज इंगलैण्ड और जर्मनी मे लडाई होगी या नहीं, अमेरिका रूस पर हमला करेगा या नही और हिन्दुस्तान पाकिस्तान में लड़ाई होगी या समझौता होगा, यह बात राजा लोग और भूमिपति नहीं निश्चय करते बल्कि पूंजीपतियो का अन्तर्राष्ट्रीय गुट्ट अपने प्रतिनिधियो द्वारा यह सब निश्चय करता है। यह पूंजीपति श्रेणी का निरंकुश राज है जिसे गाधी जी और काग्रेस इस जमाने मे रामराज का नाम देना चाहते है।

"शासन सदा निरंकुश ही होता है चाहे जिस श्रेणी का हो। प्रजा की स्वतंत्रता का अर्थ केवल शासन व्यवस्था के अनुसार चलने का अवसर होता है। कोई भी शासन व्यवस्था अपने आपको पलट देने की स्वतंत्रता प्रजा को नही दे सकती। समाज मे श्रेणियाँ पहले भी थी, आज भी हैं। आप समान अधिकार, मालिक मज़दूर के हित के समझौते और श्रेणी-मैत्री की बात कहकर इस संघर्ष पर और मज़दूर श्रेणी के शोषण पर पर्दा डालना चाहते है क्योकि आप पूंजीवादी श्रेणी के पिट्ठू हैं। श्रेणी-संघर्ष तो तभी मिट सकता है जब समाज मे श्रेणिया न रहे।"

"यदि श्रेणियाँ समाज मे सदा रही है, यदि यह मनुष्य-समाज का गुण और स्वभाव है तो श्रेणियाँ सदा ही रहेगी भी" शुद्धसाहित्यिक जी समाधान के स्वर में बोले, "जब समाज का श्रेणियों मे बँटे रहना आवश्यक है तो समाज से हिंसा को मिटाने के लिये यही उचित है कि मानवता से धर्म को मानकर सबके कल्याण की भावना से सब श्रेणियाँ अपने-अपने धर्म का पालन करें।"

"धर्म की बात तो साहित्यिकजी झगडे की है" कामरेड ने टोक दिया, "धर्म का निश्चय कौन करेगा ? पटेल साहब करेंगे ? हमारा मतलब है कि पूँजीपति श्रेणी करेगी या मज़दूर श्रेणी करेगी ? मज़दूर कहता है, मेरा पेट नहीं भरता, मेरे श्रम की कमाई मे से मुझे कुछ और हिस्सा दो । पूँजीपति कहता है, नही और हिस्सा तुमको देगे तो हमारा मुनाफा ही क्या बचेगा । मजदूर कहता है, हम हडताल करेगे । पटेल साहब कहते हैं, यह कानून मे मना है । और कानून बनाना पटेल साहब, यानि पूँजीपति श्रेणी के हाथ में है ।

"आप को याद है कि पहले मज़दूर मिलो में कितने घन्टे काम करता था ? मालूम न हो तो हम बता दे; मजदूर दस-बारह घन्टे काम करते थे, अब करता है आठ घन्टे । याद है कि मजदूर श्रेणी को इसके लिये कितना संघर्ष करना पड़ा था; कितनी हडतालें हुई थीं ! शोषक श्रेणी ने शोषित श्रेणी को कभी कोई अधिकार आसानी से नहीं दिया। मजदूर जेलो में गये और गोली चली, तब भी पूँजीपति कहता था कि मज़दूर के काम के घन्टे कम करने से राष्ट्र की हानि होगी । पूँजीपति अपने आपको तो राष्ट्र समझता है और मज़दूर को राष्ट्र की गैया या बकरा । मज़दूरी का एक-एक पैसा मज़दूर ने लड़कर ही बढ़वाया है । उसकी शक्ति एक ही बात में है कि संगठित होकर पैदावार को बन्द कर देता है । तभी पूँजीपति उसकी बात मानने के लिये मजबूर होता है । चूँकि सरकार पूजीपतियों की है, वह अपने कानून से मज़दूर को संगठित नहीं होने देती और जब जरूरत समझती है अपनी पुलिस और फौज लेकर मजदूर को पीट-पाट कर अपना कायम किया धर्म मनवा लेती है ।"

"ऐसे समय, राष्ट्र के लिये भय की पुकार उठा कर, सार्वजनिक अशान्ति का नाम देकर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को दबा दिया जाता है । क्या यह पूँजीवाद की निरंकुशता नहीं है? मजदूर को जिन्दा रहना है तो उसे पूँजीपति श्रेणी के कानून और दमन की शक्ति से

लड़ना ही पड़ेगा। पैदावार के साधन और पैदावार के बंटवारे की व्यवस्था समाज के हित के लिये अपने हाथ में लिये बिना, मज़दूर श्रेणी के सामने और कोई मार्ग नही है। मतलब यह है कि पैदावार के साधनो को समाज की साझी सम्पत्ति बना कर, पैदावार का बंटवारा मुनाफे के लिये नही, समाज की आवश्यकता के अनुसार करके ही मजदूर श्रेणी समाज से सघर्ष को समाप्त कर सकती है। पैदावार के साधन कुछ लोगो के हाथ मे होने से ही समाज मे श्रेणियाँ बन जाती है। पैदावार के साधन पूरे समाज की साझी सम्पत्ति हो जाने से, श्रेणियाँ बनने का कारण ही न रहेगा। पूँजीपति श्रेणी तो हृदय परिवर्तन द्वारा अपने आपको समाप्त कर नही देगी। सामन्त श्रेणी ने भी आत्मत्याग की भावना से अपने-अपने अधिकार पूजीपति श्रेणी को नही सौप दिये थे। आपके ये छुटपुटे राजे भी अपने आखिरी दम तक प्रजातन्त्र प्रणाली का विरोध करते रहे है, परन्तु पूँजीपति श्रेणी ने उन्हें निकाल भगाया। वह शोषण की एक अवस्था का अन्त था। शोषण की दूसरी अवस्था का भी अन्त होना चाहिये। अब आवश्यक है कि मजदूर श्रेणी, पूँजीपति श्रेणी के कारण होने वाले अन्याय और अव्यवस्था को समाप्त करे। इसके लिये शासन-शक्ति मज़दूर श्रेणी के हाथ मे ही आना आवश्यक है। शासन-शक्ति पूर्ण रूप से मज़दूर श्रेणी के हाथ मे हुये बिना पूँजीवादी व्यवस्था का अन्त नही किया जा सकता और न समाजवादी व्यवस्था ही कायम हो सकती है?" कामरेड ने अंतिम बात ऊँचे स्वर में कही।

साहित्यिकजी ने हँस कर पूछा, "और मज़दूर श्रेणी को मार कर कौन भगायेगा?"

"जब समाज में श्रेणी भेद नहीं होगा तो यह प्रश्न कैसे उठेगा!" कामरेड ने उत्तर में प्रश्न किया।

"मज़दूर श्रेणी को भगायेगी मध्यम श्रेणी।" राष्ट्रीयजी ने सीना फुला कर उत्तर दिया, "जर्मनी में कम्युनिस्टो को मध्यम श्रेणी ने

भगाया था कि नही ?'' उन्होंने कामरेड को सम्बोधन किया, ''कम्युनिज्म मज़दूरों के संकीर्ण स्वार्थ का अन्तर्राष्ट्रीय रूप है और राष्ट्रीय भावना से शून्य है। मध्यम श्रेणी ही वास्तव मे राष्ट्रीयता की रक्षा करती है, वही राष्ट्रीयता की जड़ है। इस देश मे भी वही होगा। राष्ट्र का भविष्य मध्यम श्रेणी के ही हाथ मे है।''

''हाँ ठीक है'' सर्वोदयीजी ने और शुद्धसाहित्यिक ने भी समर्थन किया, ''संस्कृति की संरक्षक तो मध्यम श्रेणी ही होती है।''

''जर्मनी के इतिह'स को आप ठीक पेश नही कर रहे है'' इतिहासज्ञ बोले, ''जर्मनी मे मजदूर आन्दोलन को मध्यम श्रेणी ने नही, जर्मनी की पूँजीपति श्रेणी ने भी अकेले नही कुचला। जर्मनी में मजदूर क्रांति को दरवाजे पर आ गया देखकर, संसार भर की पूंजीपति श्रेणी ने मिल कर उसे कुचल डाला था। जर्मनी की मध्यम श्रेणी को साधन जरूर बनाया गया था। जर्मनी में मजदूर श्रेणी को कुचल देना इसलिये सम्भव हो सका कि मजदूर श्रेणी अभी शासन की शक्ति नही पा सकी थी, समाज को श्रेणी रहित नही बना सकी थी। मध्यम श्रेणी ने रूस में क्यों नही मज़दूर श्रेणी को कुचल डाला, पूँजीपतियों के हाथ का हथियार बन कर कोशिश तो वहाँ भी मध्यम श्रेणी ने की ही थी ? रूस में संसार भर की पूँजीपति श्रेणी मिल कर, रूस की ज़ारशाही और पूँजीपति श्रेणी की सहायता कर रही थी परन्तु मजदूर श्रेणी के हाथ मे पूर्ण निरंकुश शक्ति आ जाने के कारण उन्हें डिगाया नही जा सका।

''परन्तु जर्मनी मे नाज़ीवाद ने मज़दूर श्रेणी की स्वाभाविक प्रगति को कुचल कर जो अन्तर-विरोध बढ़ा दिये उनका परिणाम क्या हुआ ? शायद आप भी अपने देश की पूँजीपति श्रेणी के हाथ की छड़ी बन कर संसार भर पर भारत का साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न देखते हैं ! क्या कहना ! दूसरे देशो में आदमी थोड़े ही बसते हैं ! वे चुपचाप आपके गुलाम बन जायेंगे ? अंग्रेज आप पर राज करे तो जुल्म। आप अंग्रेज, अमेरिका, रूस, जापान पर राज करने का स्वप्न देखें तो आपका

राष्ट्रीय अधिकार है ! उस से भी बुरा हाल होगा जो जर्मनी का हुआ। राष्ट्रहित भी शासक श्रेणी के हाथ एक अच्छा बहाना है। पूंजीपति राष्ट्रहित के नाम पर देश भर को लूटते हैं। मध्यम श्रेणी राष्ट्रहित के नाम पर अपने प्रभुत्व का स्वप्न देखती है। अरे भाई, राष्ट्र तो देश का ९९ प्रतिशत किसान मजदूर वर्ग है। राष्ट्र क्या चाहता है, यह स्वयं राष्ट्र को ही फैसला कर लेने दो !"

"अजी इस श्रेणी की स्थिति है क्या ?" मार्क्सवादी ने पूछा, "मध्यम श्रेणी पैदावार के साधनो की मालिक नहीं और न यह श्रेणी पैदावार के साधनों पर शासन करती है। पैदावार के उद्देश्य को भी यह श्रेणी निश्चय नही कर सकती इसलिये व्यवस्था पर नियंत्रण करने का उन्हे कोई अवसर हो नही सकता। मालिक श्रेणी की दास बन कर ही यह श्रेणी अपनी जीविका पाती है। मध्यम श्रेणी मालिक श्रेणी से तनखा पाकर, मालिक श्रेणी के स्वार्थ को पूरा करने के लिये मजदूरों पर शासन करने मे उन्हें सहायता देती है। इसलिये मालिक और शासक श्रेणी, मध्यम श्रेणी के लोगो को मजदूरों की अपेक्षा कुछ अधिक सुविधायें दे देती है। जैसे कोई ठेकेदार अपने मजदूरों का प्रबन्ध करने वाले मेट मजदूर को कुछ अधिक मजदूरी और एक वर्दी दे देता है परन्तु इस श्रेणी की आर्थिक अवस्था और संख्या भी नित्य गिर रही है। इस श्रेणी के लोग स्वतंत्र रूप से जो छोटे-मोटे कारोबार करते आ रहे थे, उनके कारोबार उद्योगपतियो की छाया मे मुरझाते जा रहे हैं और इन्हें पूंजीपतियों का दलाल बन जाने के लिये मजबूर होना पड़ता है। इस श्रेणी के जो लोग अच्छे पेशे चलाते आये है, उनकी सन्तानें भी उस दर्जे पर नही टिकी रह सकतीं। समाज में देखिये, कुछ बरस पहले स्कूल मास्टर और क्लर्क लोग अच्छे खासे मध्यम श्रेणी के आदमी गिने जाते थे; आज उनकी हालत कारीगर मजदूरो से गिरी हुई है।

"मध्यम श्रेणी का भविष्य और हित इस बात पर निर्भर करता

है कि यह श्रेणी समाज को शोषण और आर्थिक संकट में रखने वाली व्यवस्था का साथ देती है या समाज को शोषण से मुक्त करके आर्थिक प्रगति की ओर ले जाने के प्रयत्न में साथ देती है।

"मध्यम श्रेणी को यह निश्चय करना है कि वह मरणोन्मुख पूंजीवादी व्यवस्था की रक्षा का बोझ उठा कर, स्वयं पूजीपति श्रेणी की दास बनी रह कर, शेष समाज के साथ अपने आपको भी संकट मे रखेगी या समाज के आर्थिक सकट को समाप्त करके सम्पूर्ण समाज के साथ विकास के मार्ग पर आगे बढ़ेगी।

भद्रपुरुष ने प्रश्न किया, "क्या आप मध्यम श्रेणी से यह आशा करते हैं कि वे अपने आदर, सम्मान और जीवन निर्वाह के ऊँचे दर्जे को छोड़ कर अपनी इच्छा से मजदूरो की हीन अवस्था मे जा मिले?"

"यानि अपने बौद्धिक जीवन को तिलांजली दे दे।" साहित्यिकजी ने भी प्रश्न का समर्थन किया।

"अब आपने असली बात कही।" वैज्ञानिक बोले, "आप स्पष्ट अपना स्वार्थ स्वीकार करे तो बात समझ मे आती है। यह सोचा जा सकता है कि इस श्रेणी का हित कैसे प्राप्त हो सकेगा। राष्ट्रीयता का ढोल मध्यम श्रेणी क्यों पीटती है। मध्यम श्रेणी की यह आशंका कि समाजवादी आर्थिक व्यवस्था मे इस श्रेणी के जीवन का स्तर गिर जायगा, निर्मूल है। बहुत बड़े-बड़े पूजीपति या जागीरदार लोग, जो अकेले बहुत बड़े-बड़े महलों में और कई-कई महलों मे रहते है, कई-कई मोटरें, निजी रेलगाड़ियाँ, हवाईजहाज और पानी के जहाज रखते है, यदि अपने लिये अब से कम सुविधा की आशंका करें तो ठीक है परन्तु ऐसे लोगों की संख्या दस लाख में एक भी कठिनाई से है। अमेरिका के सम्पूर्ण धन का रुपये में बारह आने वहाँ के केवल ८५ हजार व्यक्तियो के कब्जे मे है और सबसे ऊँची श्रेणी में तो केवल १० हजार ही व्यक्ति हैं। इंगलैण्ड के धन का रुपये में ग्यारह आना वहाँ की केवल दो प्रतिशत जनसंख्या के हाथ में है। युद्ध के बाद से हमारे देश में पूजीपतियो

को अवसर मिलने के कारण यहाँ भी आर्थिक विषमता का वही हाल हो रहा है। आज ९९ प्रतिशत की आय १०० रुपया प्रति मास भी नहीं।

"निश्चय ही पूंजीवादी व्यवस्था में मध्यम श्रेणी और मेहनत करने वाली श्रेणी की अवस्था शोचनीय है और लाख में दो एक व्यक्ति बहुत ऐश में रहते है। यह सोचना गलत है कि समाजवादी आर्थिक व्यवस्था में सम्पूर्ण समाज उसी अवस्था मे रहेगा जिसमें आज मजदूर रहते हैं।"

"अजी साहब" कामरेड ने टोक दिया, "रूस के मजदूर अंडे-मक्खन खाते हैं, सूट पहनते हैं और छुट्टियों में पहाड़ों और समुद्रतट की सैर करते है। अपने क्लबों में थियेटर और नाच करते हैं। उनका अच्छे मे अच्छा इलाज होता है। आपकी मध्यम श्रेणी के अच्छे ओहदे के अफसर भी उनका सा जीवन नहीं पा सकते।"

"पूंजीपति श्रेणी अपने मुनाफे के लिये बाजार मे दाम ऊँचे रखने के लिये पैदावार कम करती जाती है। सैकडो वैज्ञानिक तरीके ऐसे है जिनका उपयोग केवल इसलिये नही किया जाता कि पुराने ढंग की मशीनो मे लगा पूंजीपतियों का सरमाया व्यर्थ न हो जाये। आज के वैज्ञानिक युग में प्रत्येक वस्तु की पैदावार जितनी चाहे बढ़ाई जा सकती है। मोटी और प्रत्यक्ष बात है कि आर्थिक संकट को दूर करने के लिये पूँजीवादी देशो में कीमते बढाई जा रही हैं परन्तु समाजवादी चीन और रूस में कीमतें लगातार घटाई जा रही है। जिस प्रकार के काम मध्यम श्रेणी के लोग करते हैं, उनकी आमदनी और जीवन का स्तर रूस में आज पुरानी पूँजीवादी अवस्था की अपेक्षा कई गुणा अधिक ऊँचा है। डाक्टर, वैज्ञानिक, कलाकार और आविष्कारक रूस में जैसी सुविधा पाते हैं वैसी किसी भी पूँजीवादी देश में नही पा सकते।"

"परन्तु पशु की तरह पेट भर लेना ही तो मनुष्यता नही है।" वितृष्णा से साहित्यिक जी ने विरोध किया, "समाजवादी रूस में जन-

साधारण को खाना मिल जाता होगा परन्तु उनकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता का तो अन्त हो गया। वहाँ न बोलने की स्वतन्त्रता है न सगठन की।"

"यह तो पूंजीपति श्रेणी का झूठा प्रचार है" मार्क्सवादी बोले, "और इसका प्रयोजन है कि पूंजीवादी देशों की जनता समाजवाद की ओर आकर्षित होकर पूंजीवाद को समाप्त न कर दे। बताइये, पूंजीवादी देशो की जनता को क्या व्यक्तिगत स्वतन्त्रता है? स्वतन्त्र व्यक्ति पहला काम करेगा अपना पेट भरना। जिसे पेट भरने की स्वतन्त्रता नही, उसे भी आप स्वतन्त्र कहेंगे? रूस में फिर से पूंजीवाद कायम करने की चेष्टा के लिये स्वतन्त्रता अवश्य नही है। क्या आपके देश में पूंजीवाद को समाप्त कर सकने की स्वतन्त्रता है? दूसरो की स्वतन्त्रता छीन कर जो अधिकार कुछ व्यक्तियों को दिये जायंगे, वे संपूर्ण समाज को स्वतन्त्र नही बना सकते। पूंजीवादी देशों में पूंजीपति श्रेणी के अतिरिक्त कौन स्वतन्त्र है? पूंजीपतियो को दूसरो के श्रम का फल भोगने की स्वतन्त्रता है, अपना स्वार्थ पूरा करने लायक सरकार बना लेने की स्वतन्त्रता है, उन्हे इस बात की भी स्वतन्त्रता है कि अपने स्वार्थ की रक्षा के लिये, मजदूर श्रेणी के स्वतन्त्रता-आन्दोलनो को कुचलने वाले कानून बना सके। यह पूंजीपति श्रेणी का रामराज्य पूंजी का निरंकुश शासन नही तो और क्या है? इसमें मेहनत करने वाली श्रेणी को क्या स्वतंत्रता है? न उचित रोजगार की, न उचित शिक्षा और आवश्यकता पडने पर इलाज की और न अपने हित की रक्षा करने वाले कानून बना सकने की।"

"अच्छा मान लीजिये, समाजवाद मे आर्थिक संकटो का उपाय हो जायगा।" कांग्रेसी जी ने विचार प्रकट किया, "तो आप वैधानिक ढंग से उसका उपाय कीजिये। अब तो देश में जनता का राज है, प्रजातंत्र है। आपको व्यक्तिगत और राजनैतिक आन्दोलन की स्वतन्त्रता है। सरकार जनता के प्रतिनिधियों के फैसले से चल रही है। आप चुनाव में अपना बहुमत पैदा कीजिये। वैधानिक तथा कानूनी ढंग से कानूनी परिवर्तन द्वारा आप जो चाहे कर सकते हैं। आप श्रेणीसंघर्ष, मजदूर-

राज और हिंसा से क्रान्ति का प्रचार क्यों करते हैं ? अरे भाई, चुनाव में आपको भी उतना ही अवसर है जितना पूंजीपतियों को और दूसरे राजनैतिक दलो को !.....क्यों साहब ?" उन्होंने सर्वोदयीजी और शुद्धसाहित्यिक को समर्थन के लिये संकेत किया ।

"साहब किस बात की स्वतंत्रता है और किसे है ?" कामरेड ने चौक कर पूछा, "शायद कांग्रेसी राज की प्रशंसा करने की, सफेद टोपी पहनने की और मुनाफा कमाने की स्वतंत्रता है । राज-भक्तों को तो अंगरेजी राज और नाज़ीराज में भी स्वतंत्रता थी । सरकार के पिट्ठुओं को तो सभी व्यवस्थाओं और तानाशाहियों में भी स्वतंत्रता होती है । आप बताइये, प्रत्येक प्रान्त की कांग्रेसी सरकार ने 'शान्ति और सुरक्षा' कानून जारी किया हुआ है या नही ? कांग्रेसी राज में दफा १४४ तो कभी खत्म ही नही होती । दमन के कानून उन्हीं लोगों के खिलाफ तो लागू होते हैं जो पूंजीपति व्यवस्था को बदलने का यत्न करना चाहते है । ऐसे लोगो को न सरकार परस्तों की तरह बोलने की स्वतन्त्रता है, न सभा करने की, न जनता के सामने अपनी बात रखने की और न जनता को संगठित करने की । वैधानिक उपाय से व्यवस्था परिवर्तन कैसे हो सकता है ? विधान का तो अर्थ ही है शासन-व्यवस्था की रक्षा ।"

इतिहासज्ञ ने बहुत उचक कर कहा, "विधान का निश्चय विधान की रक्षा करना ही है । परन्तु प्रजातंत्र व्यवस्था में विधान को बनाने और परिवर्तन करने का अधिकार प्रजा के ही हाथ में होता है । प्रजा बिधान को बदलना चाहे तो उसका यह अधिकार छीन लेना भी हिंसा है ।"

"देखिये, अशान्ति और हिंसा का प्रचार तो कोई भी सरकार नही सह सकती" सर्वोदयीजी बोले, "अशान्ति और हिंसा का तो दमन करना ही होगा ।"

"विरोध का सामना आप दमन और हिंसा से ही करेंगे तो अहिंसा का उपदेश किस समय के लिये है ?" मार्क्सवादी ने पूछा, "यदि लोगों

का मन चाहा ही होता रहे तो सभी अहिंसा का पालन मजे मे कर सकते हैं।"

"बात फिर वहीं आ गई; अशान्ति और हिंसा क्या है।" वैज्ञानिक बोले, "इस समय तो यह निर्णय पूंजीपति व्यवस्था के स्वार्थ से ही होगा ?"

"नही, यह तो मोटी अक्ल की बात है।" कांग्रेसी जी बोले, "जिस बात से सार्वजनिक जीवन की व्यवस्था बिगड़े, जैसे आप हड़ताल कराते हैं; यह अव्यवस्था पैदा करना है। इसका तो कानूनी तौर पर दमन करना ही होगा।"

"मजदूरों का हड़ताल करना किस नैतिक सिद्धान्त से हिंसा कहा जा सकता है साहब ! हड़ताल तो मजदूरों पर की जाने वाली पूजीवादी हिंसा का अहिंसात्मक विरोध है।" वैज्ञानिक ने प्रश्न किया, "मजदूर को अपने श्रम का पेट भरने लायक मूल्य मागने का अधिकार है या नहीं ? वह यह मूल्य मांगता है। किसी मजदूर के अकेले माग करने का कुछ मूल्य नही है इसलिये मजदूरो को संगठित माग करनी है। मजदूर की मांग की उपेक्षा की जाती है तो उसके पास अपनी माग पूरी कराने का क्या साधन है ? मजदूर सरकार के पास दुहाई देता है। पूंजीपतियों की प्रतिनिधि सरकार उसकी मांग को ठुकरा देती है। उदाहरण आपके सामने है, अध्यापको ने वेतन बढ़ाने की मांग की, नहर कर्मचारियों ने की, रेल मजदूरों ने की, डाक विभाग के लोगों ने की, कपड़ा मिल वालों ने की। इन सब की मागें सरकार को अनुचित ही मालूम हुईं। अब मजदूर कोई मांग करता है आप दफा १४४ लगा देते है कि वह जनता के सामने अपनी बात न कह सके। वह अपनी माग पूरी कराने के लिये हड़ताल करता है, तो आप उसे पकड़ कर जेल मे डाल देते हैं। उसे सभा करके अपना सगठन नही करने देते, उसके अखबार भी बन्द कर देते हैं। उस पर मुकदमा चलाकर उसका अपराध साबित नहीं करते। ऐसे लोगों पर आप सार्वजनिक रूप से मुकदमा चलाकर

उनके काम को जनता के सामने रखने का साहस नहीं कर सकते क्योंकि आपको भय है कि जनता की सहानुभूति जो अधिकांश में शोषित है, व्यवस्था मे परिवर्तन चाहने वालों की ओर हो जायगी— परन्तु इसमे नैतिकता क्या है और क्या अहिसा है ? मजदूरों से हड़ताल द्वारा अपनी माग पूरी करने का अधिकार छीनना उतना ही अनैतिक और अन्याय है जितना एक ज़माने में शर्तबन्द-मज़दूरी (इंडेचर्ड लेबर) का कानून था। यह केवल व्यवस्था की शक्ति से, शस्त्र-शक्ति से एक श्रेणी द्वारा दूसरी श्रेणी का दमन है। आपके कानून दलित और शोषित श्रेणी को अपनी मुक्ति का कोई अवसर नही देते। मजदूर श्रेणी का सत्य, अहिसा और न्याय का आदर्श दूसरा है। जब दो आदर्शों मे भिड़न्त होगी तो शक्ति से ही न्याय का निर्णय होगा। आज पूँजीपति व्यवस्था अपनी शक्ति का उपयोग कर रही है। इस व्यवस्था को अन्याय समझने वाली मज़दूर श्रेणी, अपनी शक्ति के उपयोग का अवसर पाने के लिये संघर्ष कर रही है और अपना न्याय स्थापित करना चाहती है।"

इतिहासज्ञ बोलने के लिये आगे सरके परन्तु मार्क्सवादी की ऊँची आवाज मे बोल उठे, "व्यवस्था और विधान चाहे सामन्त श्रेणी का हो या पूँजीपति श्रेणी का। विधान और सरकार की शस्त्र-शक्ति का प्रयोजन अपनी व्यवस्था की रक्षा ही होता है। कायम सरकार और उसकी श्रेणी अपने अधिकारो की रक्षा के लिये जनता को प्रचार द्वारा गुमराह करने की कोशिश करती है और विरोधी श्रेणी को प्रचार का अवसर और अधिकार नही देती। जनमत को अपने विरुद्ध जानकर चुनाव आदि को भी संकटमय स्थिति के बाहने से टाल देती है।

"सरकर अपने दमन को 'व्यवस्था की रक्षा के लिये शक्ति का उचित और आवश्यक उपयोग' कहती है।"

"शोषक श्रेणी के राज में शोषित श्रेणी के लिये समान अधिकार की बात ही गलत है। अधिकार का प्रयोग तो अवसर और साधनों से ह ं हो सकता है। जिस श्रेणी के पास साधन नही, उसे अपने अधिकारों

के प्रयोग का अवसर भी नही। पूंजोवादी प्रजातंत्र का सब से बडा धोखा है सबके लिये समान अधिकार और न्याय का एलान करना। पूंज़ीवादी प्रजातन्त्र एक हाथ से सबको कानूनी समानता का और न्याय का अधिकार देता है, व्यवसाय और जीविका कमाने की स्वतन्त्रता देता है, दूसरे हाथ से शोषित श्रेणी को साधनहीन बनाकर उनसे अधिकारों के प्रयोग का अवसर छीन लेता है। पूंजीवादी प्रजातंत्र मे चुनाव के या शासन का अवसर पाने के जितने साधन है वे सब पूंजीपतियो के काबू मे रहते है।"

"पूंजीवादी व्यवस्था के हाथ मे सबसे ज़बरदस्त शस्त्र मजदूर श्रेणी के संगठन और अ.न्दोलन को गैरकानूनी करार दे देना है। न्याय की समानता भी धोखा है क्योकि पूंजीपति श्रेणी की व्यवस्था मे न्याय का मूल्य देना पड़ता है। न्याय का मूल्य देने का अवसर साधनहीन श्रेणी के पास कहाँ है! शोषित श्रेणी अपने हाथ-पाँव पूंजीवादी व्यवस्था के नियमो से बॉधे रखकर कभी स्वतंत्रता नही पा सकती और न शासन का अधिकार अपने हाथ मे ले सकती है। शोषित श्रेणी के लिये मुक्ति, आत्मनिर्णय और समाज के शासन का अधिकार पाने का एक ही उपाय है—अपनी संगठित जन शक्ति से पूंजीवादी व्यवस्था का चलना असम्भव करके उसके स्थान पर अपनी नयी आर्थिक और शासन की व्यवस्था कायम करना। यह न्याय के दो आदर्शो का संघर्ष है। समाज उसी श्रेणी के न्याय को स्वीकार करता है जो अधिक बलवान होती है।"

कामरेड इतिहासज्ञ को दबाकर बोले, "श्रेणी रूप से मेहनत करने वाली श्रेणी ही समाज मे सबसे बलवान है इसलिये समाज का नेतृत्व इसी श्रेणी के हाथ में आना न्याय है और आवश्यक भी है।"

"आप तो हिंसा को ही न्याय, अन्याय को ही न्याय बता रहे है!" सर्वोदयीजी ने विरोध किया। इसके अतिरिक्त कुछ कह नही सके।

इतिहासज्ञ ने स्वर ऊँचा करके कामरेड को चेतावनी दी, "आप बिलकुल असंगत बाते कर रहे है....."

सर्वोदयीजी और कांग्रेसी जी भी बोल पड़े, "हाँ हाँ, बिलकुल बेमतलब ! सुनिये ! सुनिये !"

इतिहासज्ञ को मैदान मिला तो खांस कर बोले, "आपकी बातें बिलकुल असंगत है। आप कहते है समाज मे सबल श्रेणी का ही न्याय चलता है। यह भी कहते है कि समाज में मजदूर श्रेणी सबसे बलवान है। यदि ऐसा है तो मजदूर श्रेणी अपना न्याय क्यों लागू नही कर सकती।....."

कामरेड ने टोक दिया, "हमारे समाज मे मजदूर श्रेणी अभी अपनी शक्ति से सचेत नहीं है।"

"अजी बात तो कह लेने दीजिये।" इतिहासज्ञ ने खिन्नता प्रकट की, "जिसे अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं, उसका बल क्या हुआ ? जिसे अपनी शक्ति का ज्ञान नही, उसे अपने कर्त्तव्य का ज्ञान कैसे हो सकता है ?....."

"बहुत ठीक ! बहुत खूब !" सर्वोदयीजी, कांग्रेसी जी और शुद्ध साहित्यिक ने समर्थन के लिये हुंकार भरी।

"परन्तु हमारा कर्त्तव्य....." कामरेड फिर टोकने लगे।

इतिहासज्ञ ने दोनो हाथ उठा कर दुहाई दी, "हमारी भी सुन लीजिये ! आपका कर्त्तव्य यही है न कि मजदूर श्रेणी को उसकी शक्ति का ज्ञान करायें। परन्तु याद रखिये कर्त्तव्य ज्ञान के बिना शक्ति बहुत ही विनाशकारी हो सकती है....."

"बिलकुल ठीक, बहुत खूब !" सर्वोदयी और कांग्रेसी ने दाद दी।

"साधु ! साधु !', शुद्ध साहित्यिक ने भी समर्थन किया।

इतिहासज्ञ अखाड़े में जम गये तो धैर्य से बोले, "सुनिये, पूंजीपति भी तो मनुष्य है परन्तु पूंजीपति श्रेणी का शासन आज समाज के लिये हितकर नहीं रहा क्योकि वह समाज की व्यवस्था को अपने व्यक्तिगत हित या अपने मुनाफे के विचार से चलाना चाहता है। यह उसका संकीर्ण स्वार्थ है परन्तु मजदूर भी तो व्यक्ति है। वह भी व्यक्तिगत रूप से

संकीर्ण स्वार्थ में फस सकता है। मज़दूर ऐसा करता भी है। यदि मजदूरी काम के परिमाण के अनुसार न हो और मज़दूरों पर नियंत्रण न हो तो वह कभी उस लगन से काम नहीं करता जैसे किसान अपने खेत में या अपना काम करने वाला कारीगर घर में करता है। हम अधिकांश मज़दूरों की बात कह रहे हैं। कभी सरकारी मज़दूरों को काम करते देखा है आपने ! सुनिये, यदि मज़दूर के हाथ में शक्ति हो और कर्त्तव्य बुद्धि न हो तो समाज के लिये मज़दूर का संकीर्ण स्वार्थ पूंजीपति के संकीर्ण स्वार्थ से अधिक हानिकारक होगा। सीधी बात है, पूंजीपति तो अपने संकीर्ण स्वार्थ के लिये भी मज़दूरो को जिन्दा रखना चाहेगा,परन्तु यदि मजदूरों में अपने मज़दूरी के कारोबार को जिन्दा रखने या उसे उन्नत करने की चेतना हो, वह केवल मज़दूरी ले सकने की ही बात सोचे तो क्या होगा ? बताइये, अभी तक मज़दूर यूनियनों का क्या व्यवहार है ?''

सर्वोदयीजी और काग्रेसीजी ने फिर ऊँचे स्वर से उनका समर्थन किया।

कामरेड दबे नही बोले, ''अभी तक मज़दूर यूनियनो को ऐसा उत्तरदायित्व और अवसर ही कहाँ मिला है ? अभी तो मज़दूर शोषण के विरुद्ध लड़ रहे हैं।''

''सुनिये'', इतिहासज्ञ बोले, ''शोषण के विरुद्ध लड़ना उचित और आवश्यक है परन्तु शोषण के विरुद्ध लड़ते समय भी उत्पादन की उपेक्षा तो नही की जा सकती। ऐसे संघर्ष में भी कर्त्तव्य बुद्धि ही सहायक होगी। कर्त्तव्य बुद्धि शक्ति को बढ़ाती है। आप श्रेणी संघर्ष द्वारा समाज के शासन की शक्ति पूंजीपति श्रेणी से छीन लेने की बात करते हैं। उसके लिये आधुनिक युग में किसी रक्त-क्रान्ति की जरूरत नही है। राष्ट्रीय सम्पत्ति को नष्ट करने की भी जरूरत नहीं है। ऐसी घटनायें तब होती थीं जब मज़दूर श्रेणी को अपनी बात सुना सकने का अवसर नहीं था। जब मजदूर श्रेणी के हाथ में कोई भी वैधानिक अवसर नहीं था तब

भी वह शनैःशनै बल पकड़ती गयी । अब कम से कम प्रजातंत्रवादी देशों में तो ऐसी अवस्था है कि किसान-मज़दूर श्रेणी पूर्ण रूप से सचेत हो जायें तो शक्ति उनके शोषकों के हाथ में एक दिन भी नही रह सकती परन्तु मज़दूर श्रेणी में उस शक्ति को पाने और संभालने की कर्त्तव्य-बुद्धि भी तो जगानी चाहिये !''

''हाँ हाँ !'' सर्वोदयी जी और कांग्रेसी ने समर्थन किया ।

''आपको कर्त्तव्य बुद्धि का क्या प्रमाण चाहिये ?'' कामरेड और मार्क्सवादी ने ललकारा ।

''इतिहासज्ञ ने धैर्य रखने का संकेत किया'', कर्त्तव्य बुद्धि का प्रमाण राष्ट्रीय उद्योगों के, उदाहरणतः रेलवे, पोस्ट आफिस या राष्ट्रीय कारखानों की मज़दूर यूनियनों को देना चाहिये । यदि इन उद्योगों में यूनियनों के सहायोग से व्यवस्था को सुधारने और पैदावार को बढ़ाने में सहयोग मिले तो इन उद्योगों के मज़दूरों की आर्थिक स्थिति को सुधारने में बहुत बड़ी सहायता मिल सकेगी । आप जानते है रेलवे से प्रतिवर्ष करोड़ो रुपये के माल की चोरी होती है, उससे अधिक नुकसान प्रतिवर्ष रेलवे को रेलवे कर्मचारियों की धांधली के कारण होता है । सरकार से नियन्त्रित कारखानो में श्रम शक्ति-का कितना अपव्यय होता है ? यूनियनो ने कभी इसके विरुद्ध आवाज उठायी है ? यूनियनें, इन उद्योगों को उन्हें पालने वाली गैया मानकर, उन्हें पुष्ट करने का यत्न करे तो क्या परिणाम होगा ?

इतिहासज्ञ कहते गये, ''मज़दूर और कर्मचारी यूनियनें अभी तक अपने संगठनों का उद्देश्य आत्मरक्षा के लिये विरोध ही समझती रही हैं परन्तु क्या वे सदा शोषित ही रहेंगे ? यदि शासक बन सकने का उत्तर-दायित्व संभालना है तो उनके सगठनों को, रचनात्मक उद्देश्यों को भी समझना चाहिये । समाज के शासन की अधिकारी तो वही श्रेणी होगी जिसकी रचना और रक्षा कर सकने की शक्ति अधिक होगी ।

चक्कर क्लब में उस दिन विचित्र बात हुई । क्लब का अंत समझौते से हो सका ।

● ●